साहू गोयम पण्णा ते

भाग-2

संघ शास्ता शासन प्रभावक
गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म.
के प्रवचन

संपादकः
गुरु सुदर्शन शिष्य जय मुनि

जय जिनशासन प्रकाशन

साहू गोयम पण्णा ते

भाग—2

संघ शास्ता शासन प्रभावक
गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म.
के प्रवचन

संपादकः
गुरु सुदर्शन शिष्य जय मुनि

जय जिनशासन प्रकाशन

प्रथम संस्करण — जनवरी 2022
सर्वाधिकार © प्रकाशक

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान :–
रविन्द्र जैन
जय जिनशासन प्रकाशन
212, वीर अपार्टमैन्टस्, सैक्टर 13,
रोहिणी, दिल्ली-110 085
Mob +9[illegible]
Email : jaijinshasanprakashan@gmailc om

मुद्रक :–
सिस्टम्स् विज़न, नई दिल्ली
Mob +9[illegible]
Email: systemsvision@gmailc om

SAHU GOYAM PANNA TE

Author:– गुरु सुदर्शन शिष्य–जय मुनि

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की, फोटोकॉपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की किसी भी प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय iv

12. मोह विजय है दुःख का ईलाज 1

13. बुझाओ इस प्यास को 25

14. लोभ की सूक्ष्म तरंगें.....50

15. अकिंचनता का सिंहासन 75

16. बदलना है मूल-वृत्तियों को 100

17. जीवन लक्ष्य-दोष निवारण 124

18. आत्म स्वातंत्र्य की घोषणा 147

प्रकाशकीय

परम पूज्य संघशास्ता गुरुदेव श्री सुदर्शनलाल जी म. का जन्म शताब्दी वर्ष उपस्थित है। इस उपलक्ष्य में उनके प्रवचनों की शृंखला पाठकों को उपलब्ध हो, ऐसी भावना बनी। इस भावना पूर्ति में ये पहला प्रयास है।

पूज्य गुरुदेव जी म. ने अपने देवलोक से एक सप्ताह पूर्व अपने समृद्ध कोष में से 76 पन्ने अपने सुशिष्य आगम रत्नाकर बहुश्रुत श्री जय मुनि जी म. को दिये थे। जिनका पुनर्लेखन श्री नरेश मुनि जी म. की प्रेरणा से इन्होंने 2015 में किया था। वह संग्रह हमें प्राप्त हुआ। अब आप ग्रहण करें, औरों को पहुँचाएं। इस प्रक्रिया को जारी रखने से आत्मकल्याण और सर्वकल्याण हो सकता है।

"जय जिनशासन प्रकाशन"
रविन्द्र जैन

12. मोह विजय है दुःख का ईलाज

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है, कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होई तण्हा,
तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स ण किञ्चणाइं।[1]

सारा संसार दुःखों की ज्वाला में जल रहा है। सुख शांति का नामोनिशान नहीं है। जो थोड़ी बहुत सुख की अनुभूति हो रही है, वह भी एक छलावा है, धोखा है, आत्म प्रवञ्चना है।

जो सच पूछो तो दुनिया में फ़क्त रोना ही रोना है।
जिसे हम जिन्दगी कहते हैं, काँटों का बिछौना है ॥

किसी न किसी प्रकार दुःख इंसान के ज़हन को कुरेदता ही रहता है। महाभारत में जिक्र आता है कि अर्जुन के तीरों से भीष्म पितामह का सारा शरीर इतना ज्यादा बिंध गया था कि वे मरते समय किसी गद्देदार शय्या पर लेटने की बजाय शरशय्या पर लेटे हुए थे, लेकिन उनका सिर जमीन पर लटका हुआ था। उनका संतुलन बनाने के लिए जब मखमली तकिया लगाया जाने लगा, तब उन्होंने वह तकिया लेने से मना कर दिया और अंत में अर्जुन ने एक तीर सिर के नीचे गाड़कर उनका संतुलन बनाया था।

---

1 उत्तराध्ययन 32 अध्ययन 8 गाथा

भीष्म पितामह की तरह आज का हर मानव दुःख रूपी तीरों की शय्या पर लेटा हुआ है। वह जितना दुःख से बचने की कोशिश करता है, उतना ही दुःख और पीड़ाओं की ज्वालाओं में झुलसता जाता है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने दुःख का असली समाधान प्रदान किया है। उन्होंने फरमाया है कि **'दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो'** जिस मानव का मोह समाप्त होता है, उसी का दुःख खत्म होता है। दुःख तो मोह का Prod t है। मोह जन्मेगा तो दुःख जन्मेगा। मोह बढ़ेगा तो दुःख बढ़ेगा। मोह घटेगा तो दुःख घटेगा और मोह मिटेगा तो दुःख भी मिटेगा। दुःख कुछ भी नहीं है, मोह की प्रतिच्छाया है। मोह एक नींद है, मोह एक मूर्च्छा है। मानसिक कोमा (Coma) है। नींद में सोए आदमी को यह अहसास नहीं होता कि मैं नींद में हूं। मूर्च्छा में पड़े इंसान को मूर्च्छा से निकालना इसलिए कठिन है क्योंकि उसे पता ही नहीं कि मैं मूर्च्छा में हूं। कोमा वाले को अपने कोमे का बोध नहीं होता। मोहनीय कर्म सब कर्मों का सेनापति है। इसी के कारण यह आत्मा कर्मबंध कर रही है, जन्म-मरण कर रही है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है—ये आत्मा अनन्त सुख की भण्डार है। सुखी होना हर आत्मा का जन्मसिद्ध अधिकार है। ये उसका Birth rig है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त बलवीर्य ये आत्मा के सहजात प्रकृति सिद्ध गुण हैं, लेकिन हम पर मोह का ऐसा नशा चढ़ा हुआ है कि हमें अपने इस गुण का ज्ञान नहीं है और हम बाहर ही सुख को ढूंढ रहे हैं।

ज्यों तिल मांही तेल है ज्यों चकमक में आग,
तेरा सांई (सुख) तुझ में बसै जाग सके तो जाग ॥
कस्तूरी कुण्डली बसै मृग ढूंढै वन माहीं,
ऐसे घट-घट राम है मूरख समझे नाहीं ॥

एक गांव के बाहर हनुमान जी का मंदिर था। मंदिर में एक पुजारी को नियुक्त किया हुआ था। वह पूजा पाठ करता रहता तथा मंदिर के साथ बनी हुई धर्मशाला की देखभाल कर लेता था। थोड़ी जरूरतें थी, थोड़ी इच्छाएं थी इसलिए मस्ती की जिंदगी बिताता था। लेकिन अपने अंदर की झांकी उसे नहीं हुई थी।

एक दिन एक शानदार गाड़ी मंदिर के आगे रुकी। एक सेठ-सेठानी बाहर आए। कुछ नौकर-चाकर भी साथ थे। काफी सुविधा का सामान, खाने-पीने की सामग्री साथ थी। नौकरों ने सेठ को आराम मिले, इसके लिए धर्मशाला में इंतजाम करना शुरू कर दिया। सेठ-सेठानी ने कुछ देर मंदिर में पूजा की, फिर आराम करने धर्मशाला में आ गए।

खाना तैयार हुआ, खा-पीकर सेठ जी पलंग पर लेट गए। नौकर पंखा झलने लगे, पैर दबाने लगे। ये सारा नक्शा मंदिर का पुजारी देख रहा था। सोचने लगा—जिंदगी का असली मजा तो ये सेठ लूट रहा है। क्या शाही ठाठ है, एक मैं हूं जो अभावों की जिंदगी बसर कर रहा हूं। मंदिर की मामूली सी नौकरी, गांव में सारे लोगों की गुलामी। फिर ख्याल आया, चलूं, एक बार सेठ से बात करके देखूं। बड़ी शिष्टता के साथ पुजारी सेठ के पास आया। कहने लगा—सेठ जी, बुरा न मानो तो एक सवाल पूछ लूं। सेठ ने कहा—ब्रह्मचारी जी पूछो, जो इच्छा हो। उसने पूछा—आप तो पूरी तरह सुखी होंगे ही, क्योंकि मैंने आज तक इतना सुखी आदमी कोई नहीं देखा। शब्द सुनते ही सेठ की अंतरात्मा चीख उठी, आंखें डबडबा गई, आंसुओं को जबरदस्ती रोकते हुए कहने लगा—ब्रह्मचारी जी, संसार में मुझ सा दुःखी कोई नहीं होगा। तुम्हें तो मेरी धनमाया दिखाई देती है, लेकिन धनमाया से कभी सुख थोड़े ही मिलता है।

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे,
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं कष्टसंश्रयम् ॥

कमाने की परेशानी अलग, बचाने की अलग। इस धन का आना भी दुःख और जाना भी दुःख, धन तो दुःखों का पुंज है।

धन के ढेर लगे हुए हैं, पर दिल की एक हसरत भी पूरी नहीं हुई। मेरी उम्र ढलने को है, अभी तक पुत्र-पुत्री का मुख नहीं देख पाया और जब तक पुत्र मुख न देख लूं तब तक सुख कहां। दिन रात मैं झूरता रहता हूं। पल-2 घर वाली तड़फती रहती है पर जिंदगी सूनी है। गृहस्थी का घर औलाद बिना श्मशान के समान होता है और इस श्मशान की चिता के गर्म-2 शोलों पर मैं और मेरी घर वाली निरन्तर जले जा रहे हैं। हर वैद्य, डॉक्टर को दिखा दिया। हर पंडित पाधे का बताया हुआ उपाय कर लिया। आज भी कई मंदिरों में पूजा करते-2 इस मंदिर में पूजा करने आया हूं। किसी ने कहा था कि उस हनुमान मंदिर की पूजा फल देती है। पूजा तो मुझे क्या करनी थी, बस एक मांग लेकर मंदिर में आया हूं। शायद मेरी मनौती पूरी हो जाए, उस सेठ ने तो अपनी पूजा का असली भाव प्रकट कर दिया, लेकिन कितने लोग हैं जो इतनी हिम्मत रखते हों। उनकी हर धर्मक्रिया का लक्ष्य भौतिक एषणा होता है। एक आदमी को ये पता चल जाए कि एक सामायिक करते ही आसन के नीचे एक सोने की मोहर मिलेगी। फिर देखना, वह कितनी सामायिकें करेगा। इस स्थानक में सामायिकें ही सामायिकें नजर आएंगी। मानव का समग्र जीवन भौतिकता के हवाले हो गया है। ये सब मोह का परिणाम है और मोह से दुःख ही उपजता है। हमें भौतिकता ने इस कदर जकड़ लिया है कि धर्मध्यान की बातें तो बेमानी सी लगती हैं। आज के मानव की विडम्बना का खुलासा करने वाला बड़ा ही तर्कसंगत प्रसंग है।

एक जिज्ञासु ने एक संत से पूछा—महाराज, राम नाम से कैसे प्रेम हो तथा कैसे भजन बने? संत ने समझाया—भाई, राम नाम का मूल्य और महत्त्व समझोगे तो प्रेम भी होगा और प्रेम होगा तो फिर भजन भी हो जाएगा। भक्त बोला—महाराज, मूल्य और महत्त्व तो कुछ-2 समझ में

आता है, पर भजन फिर भी नहीं होता। भक्त की बात सुनकर संत जी झल्ला उठे, हालांकि संत को झल्लाना नहीं होता। पर वे झल्लाकर कुछ संदेश देना चाहते थे। बोले—'क्या धूल समझ में आता है? समझ में आया होता तो क्या प्रश्न शेष रह जाता, फिर तो भजन ही भजन होता। अभी तो तुम राम नाम को कौड़ियों से भी कम कीमती समझते हो।' भक्त तो भौंचक्का रह गया, वह तो अपने मन में ये विचार लिए बैठा था कि राम नाम से ही कल्याण होगा। परंतु महात्मा जी तो इसी बात पर लताड़ने लगे फिर भी अपनी बात भक्त ने रखी। महाराज, कौड़ियों के साथ राम नाम की तुलना कैसी? अब महात्मा जी बड़े तर्क संगत ढंग से बात समझाने पर आए और बोले—'अच्छा तो बताओ, तुम्हारी वार्षिक आय अधिक से अधिक कितनी है?' 'जी, लगभग 40-50 हजार रुपए,' 'अच्छा अब विचार करते हैं, आप व्यापारी हो, हिसाब लगाना जानते हो। इसका मतलब ये कि एक महीने की आय चार हजार रुपये और एक दिन की आय 140 रुपये। चौबीस घंटे में 140 रुपये की आय का मतलब है—एक घंटे में पौने छह रुपये। इस हिसाब को जरा और आगे बढ़ाइए। एक मिनट में आधा आने की आमदनी। अब जरा सोचो, उसी एक मिनट में कम से कम डेढ़ सौ राम नाम का उच्चारण कर सकते हो अर्थात् जितनी देर में छह पैसे पैदा होते हैं उतनी देर में डेढ़ सौ राम नाम आते हैं। मतलब ये कि एक पैसे में पच्चीस राम नाम हुए। इतने पर भी पैसे के लिए खूब चेष्टा करते हो पर राम नाम के लिए नहीं। अब बताओ कि तुमने राम नाम का मूल्य कौड़ियों के बराबर कहां समझा? यह हिसाब तो 45-50 हजार की वार्षिक आय वाले का है। साधारण आय वाले लोग हिसाब लगाकर देखें और समझें कि राम नाम की वे कितनी कम कीमत आंकते हैं।' अंततः भक्त को हां भरनी पड़ी। महाराज, बात तो ऐसी ही है। ये सारा प्रभाव तन मन पर छाए हुए मोह का है। हमें समझ ही नहीं आता कि हमारा हित किसमें है तथा अहित किस बात में। बस एक ही बात सूझती है या पैसा या परिवार या पद या प्रतिष्ठा। इनके लिए चाहे शांति लुटानी पड़े

तो तैयार हैं, धर्म बेचना पड़े तो तैयार हैं, जमीर लुटानी पड़े तो तैयार हैं। हम लोगों का तो धर्मध्यान भी पाखण्ड और दिखावा बन चुका है। एक शब्द धर्म ध्यान का और सौ शब्द दुनियादारी के।

राजस्थान के एक परिवार की घटना है—एक श्राविका सामायिक किए हुए बैठी थी। घर के अंदर तो घर का ही माहौल होता है। कहीं दूध रखा था, कहीं गुड़ का घड़ा खुला पड़ा था। बुढ़िया नमोकार मंत्र भी पढ़ रही थी और घर के सामान की रखवाली भी। थोड़ी देर में एक कुत्ता घर में आ गया। घर के बहू-बेटे इधर-उधर काम में Bu y थे। बुढ़िया ने सोचा—इस कुत्ते को भी भगाना है और सामायिक भी बचानी है। जाप भी नहीं टूटने देना है। उसे एक बात सूझी। उसने एक कविता सी बनाई—**लम्बड़ पूंछो हल्का पेटो, घर में कुतिया आणं जी, नमो अरिहंताणं।** बुढ़िया की आवाज पर घर वालों का ध्यान नहीं गया तो उसने और जोर से अपनी बात कहनी शुरू कर दी—**दूध, दही ना भाण्डया फोड़या, कोठा माहीं घुसाणं जी, नमो सिद्धाणं।** इतने में भी बात नहीं बनी तो ऊंची आवाज में बोल पड़ी—**लप-लप जाता गुड़ नै खाता, घी को घड़ो गिराणं जी, नमो आयरियाणं।** इतना नुकसान अपनी आंखों से नहीं देखा गया तो पुकारने लगी—**बहू जी आओ, मूसल लाओ, लै इन्नो धमकाणं जी, नमो उवज्झायाणं।** अब बहू के कान में आवाज पहुंची तो जल्दी-2 दौड़ी आई। कुत्ता तो भगा दिया मगर सास की सामायिक के Sty e पर बहुत हंसी आई। उसने भी सास के स्वर में स्वर मिलाते हुए वाक्य पूरा कर दिया—**पीहर में सामायिक देखी पर या भाव विधि ना देखी, दोनूं काम कराणं जी, नमो लोए सव्व साहूणं।**

इस तरह की हास्यास्पद बातें देखकर नई पीढ़ी के बालक-बालिकाओं की धर्म क्रियाओं से आस्था उठ जाती है। यदि धर्म ध्यान करना है तो सच्चे दिल से करो। यदि दुनियादारी करनी है तो ईमानदारी से करो। दोनों काम नहीं चलेंगे।

न खुदा ही मिला न वसाले सनम[1],
न इधर के रहे न उधर के रहे ॥

उधर, हनुमान जी के मंदिर में पूजा करने आए सेठ जी कहने लगे—पुजारी जी, हम तो तिल-2 कर मर रहे हैं। संतान के बिना सब कुछ फीका और सूना सा लगता है। यदि तुझे सुखी इंसान देखना है तो हमारे गांव की पूर्व दिशा में एक पंडित जी को देख ले, एक से एक सुंदर दस पुत्रों के पिता हैं। इतना बड़ा सौभाग्य किसी पुण्यशाली मनुज को मिलता है। मैं केवल एक पुत्र की कामना में तड़फ रहा हूं। उसे दस-दस पुत्र नसीब हुए हैं। क्या सुख है क्या आनंद है। हर घड़ी चैन की बंसरी बजती है उसके घर। तू एक बार तो उससे मिल ले, तुझे भी सुख मिलेगा। मंदिर का पुजारी उस ब्राह्मण का पता लेकर पहुंच गया। ब्राह्मण ने नए आगंतुक का स्वागत किया और पूछा—आप किस उद्देश्य से आए हैं? उसने उत्तर दिया कि मैं पूछने आया हूं कि क्या आप इस दुनिया में सबसे सुखी हैं। यदि आप सुखी हैं तो मुझे अपने सुख का कारण बता दें। पंडित जी तो हक्के-बक्के रह गए। पूछने लगे—'ये गलत सूचना आपको किसने दे दी कि मैं सबसे सुखी आदमी हूं?'

पुजारी बोला—'मुझे तो एक सेठ ने बताया है। वह कहता है कि आपके घर में दस पुत्रों ने जन्म लिया है, इसलिए आप सर्वाधिक सुखी हैं।' ये दलील सुनकर पंडित जी को हंसी कम, रुलाई ज्यादा आ गई। सुबकते हुए कहने लगे—'मुझे जैसा दुःखी इंसान तो धरती पर कोई नहीं होगा। मुझे जैसी निकम्मी, उद्दण्ड, वाचाल औलाद मिली है वैसी शायद ही किसी घर में हो। ये मेरे बेटे नहीं, मेरे बाप हैं, हर वक्त सिर पर चढ़े रहते हैं। यमदूत बनकर मेरी जान लेने पर आमादा हैं। अब तो प्रभु से यही प्रार्थना करता हूं कि मुझे जल्दी उठा ले। इनके किए गए अपमान प्रताड़नाओं से खिन्न हो चुका हूं। कोई तो हद होती होगी, इन्होंने तो हर हद पार कर दी। एक लड़का भी तो काम का होता। 'काम के ना

---

1 प्रिय मिलन

काज के, ढाई सेर अनाज के'। बात-2 में कह देते हैं हमारा बाप मरता भी नहीं।'

इतनी सी उम्मीद रखना आज की औलाद से,
बाद मरने के चिता को आग दे दें वक्त पर।

एक तरफ अपने को देखता हूं जिसकी बात एक कुत्ता भी नहीं सुनता। दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जिनकी बात मानने के लिए सैंकड़ों, हजारों आदमी तैयार रहते हैं। एक आवाज देते ही अपने पराए सब पीछे चलने को मचल उठते हैं। इसी शहर के उत्तर में एक नेता जी रहते हैं, क्या रौब और रुतबा है। क्या मजाल उसके आगे कोई चूं भी कर दे। मेरे तो अपने भी खाने को आते हैं। उसके घर बेगानों का भी मेला लगा रहता है। सैंकड़ों युवक घेरा बनाकर उसकी सुरक्षा में लगे रहते हैं। उसके पास तो समय भी नहीं है। मुश्किल से निकाल पाता है। ऐसी होनी चाहिए टौर और शान। तू मेरी छोड़ उससे अकेले में बात कर फिर तुझे पता चलेगा कि सुख क्या होता है?

बेचारा पुजारी तो बेचारा ही था। एक रुचि थी, शौक था कि सुखी इंसान की तलाश करूं। ये समस्या तो अनादि काल की है, इसे कोई सुलझा नहीं पाया है। बड़े-2 धनी, ज्ञानी, सम्राट् इस संसार से घोर अतृप्ति लेकर विदा हुए हैं। जिन्हें आत्मबोध नहीं हो पाया उन्हें सुख और संतोष कहां मिल सकता है?

एक बड़ा हृदयहारी प्रसंग पढ़ा था। 'महान वैज्ञानिक आईंस्टीन अपनी मृत्यु शय्या पर लेटे हुए थे। कुछ अत्यंत निकट के मित्र भी पास बैठे थे। सोच रहे थे कि इस आदमी ने जिंदगी का सार हासिल कर लिया। समग्र विश्व इसके प्रतिभा और आविष्कारों के आगे नत मस्तक है। वस्तुतः आईंस्टीन ने अपने सापेक्षता सिद्धांत से वैज्ञानिक जगत में एक क्रांति मचा दी थी। उसकी एक झलक पाने को, एक वक्तव्य सुनने को लाखों लोग लालायित रहते थे। उसके बारे में कितनी ही किंवदंतियां

प्रचलित हो चुकी थी। कहते हैं कि द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिकाएं झेलने से संत्रस्त हुई जनता को आईंस्टीन के सापेक्षतावाद में कुछ आशा की किरण नज़र आई थी। उनके पास जगह-2 से व्याख्यान देने का बुलावा आता था। वे भी एक ही ढर्रे से अपना भाषण देते और आगे चल देते थे। उनके भाषण को सुन सुनकर उनके शौफर (Driver) को उनका सिद्धांत शब्दशः याद हो गया। एक दिन उसने मजाक में ये बात कह भी दी कि मैं भी आपका भाषण दे सकता हूं। आईंस्टीन को बड़ा सुखद लगा। कहने लगे—फिर ठीक है, अगले भाषण स्थल पर तुम ही भाषण देना, वहां के लोगों के लिए मैं एकदम नया हूं। मेरी शक्ल को वे पहचानते नहीं है। मैं Driver के तौर पर जाऊंगा और तुम आईंस्टीन की हैसियत से जाना। एक विश्वविद्यालय में पहुंचे। शौफर का भव्य स्वागत हुआ, उसने पूर्ण आत्म विश्वास के साथ भाषण दिया। बड़ी तालियां बजीं। तभी एक श्रोता ने कहा कि मैं Theory of Relativity के सिद्धांत पर एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। स्वीकृति मिलने पर उस श्रोता ने अपना प्रश्न प्रस्तुत कर दिया। शौफर तो इस सिद्धांत से अनभिज्ञ था, मगर उसने आत्म विश्वास नहीं खोया। बड़े इत्मीनान से बोला—यार, क्या घटिया प्रश्न पूछा है, इसका जवाब तो मेरा शौफर भी दे सकता है और प्रच्छन्न शौफर आगे आ गया और उस प्रश्न का सही-2 जवाब दे दिया। सभी श्रोता संतुष्ट हो गए। गाड़ी में बैठकर आईंस्टीन ने उसे बहुत शाबाशी दी कि आज तूने मेरी इज्जत बचा ली।

आईंस्टीन के एक वक्तव्य की बड़ी प्रसिद्धि रही है कि उनसे किसी ने पूछा था कि तीसरे विश्व युद्ध में किस तरह के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग होगा। तब उन्होंने कहा था कि तीसरे विश्व युद्ध के आयुधों की बात तो मैं नहीं कह सकता, अलबत्ता चौथा विश्व युद्ध पत्थरों से लड़ा जाएगा क्योंकि तीसरे विश्व युद्ध में मानवीय सभ्यता का पूर्ण विनाश हो जाएगा और बचे खुचे लोग ही नई सृष्टि की नींव रखेंगे और चौथे विश्व युद्ध में मानव पाषाण युग में जी रहा होगा। इस प्रकार चौथा युद्ध पत्थरों के जरिए लड़ा जाएगा।

इसी आईंस्टीन की चर्चा चल रही थी। उनके मित्र उन्हें अंतिम विदाई देने उपस्थित हुए थे। किसी ने पूछा—दोस्त, आपकी अंतिम इच्छा क्या है? महान् वैज्ञानिक ने अपने मनोभाव जताए कि मैं अगले जन्म में वैज्ञानिक नहीं, संत बनना चाहता हूं। मित्रों ने पूछा—क्यों? क्या वैज्ञानिक बनना छोटी बात है? आईंस्टीन बोले—'एक वैज्ञानिक परमाणुओं पर अनुसंधान करता है, पदार्थों पर खोज करता है। मैंने पदार्थ जगत का बहुत विश्लेषण किया पर मैं देख रहा हूं कि मैं शून्य हूं। मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। संत अपनी अंतश्चेतना का अनुसंधान करते हैं। अपने आपका साक्षात्कार करते हैं। अतः मैं चाहता हूं कि यदि मुझे अगला जन्म मनुष्य का मिले तो मैं संत बनना पसंद करूंगा।

हर व्यक्ति अपने अंदर एक रिक्तता का अनुभव कर रहा है। अपनी पहचान किए बगैर किसे सुख और चैन मिली है? वह पुजारी उस प्रसिद्ध नेता के घर पर पहुंचा। बड़ी कठिनाई से मिलने का समय दिया। आखिर बिना किसी औपचारिकता के उसने पूछा कि आप सबसे सुखी मानव हो ना? नेता जी भी अनौपचारिक Mood में थे। कहने लगे—मैं आपसे परिचित तो नहीं हूं, पर आपकी जिज्ञासा देखकर अपने मन की बात छिपा नहीं रहा हूं। मैं एक सियासतदान आदमी हूं। बड़े-2 अधिकार मेरे पास हैं, लोग मेरे इर्द-गिर्द मंडराते हैं, हर वक्त खुशामद करते हैं, मुझे खुदा और परमात्मा कहते हैं। लेकिन मैं जानता हूं कि ये सब चापलूस लोग हैं। मेरे सामने जी हजूरी करते हैं। पीठ पीछे निंदा भी करते हैं, छुरा भी घोंपते हैं। खतरों में जीवन की सांसे काटता हूं। सुख का अंशमात्र भी मेरे हिस्से में नहीं आया। न सुख से खा सकता हूं, न सुख से सो सकता हूं। सत्ता है, अधिकार है मगर ज्ञान नहीं है। कभी-2 मन ही मन अपनी अशिक्षा पर जी भरकर पछताता हूं। लोगों में सम्मान तो शिक्षित व्यक्ति का ही होता है।

'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' राजा तो अपनी सीमाओं में ही पूजा सम्मान पाता है जबकि विद्यावान् व्यक्ति सब जगह पूजनीय

होता है। राजनेता लोगों की नकेल तो पढ़े-लिखे अफसरों के हाथों में होती हैं। पुराने जमाने में राजा मंत्रियों द्वारा संचालित होते थे। आजकल के Min sters को ब्यूरोक्रेट चलाते हैं। यदि पढ़े-लिखे लोग पीछे न हों तो सत्ताधीशों की गद्दी एक दिन में छिन जाए। राजनेता के कथन में खरा सत्य छिपा था।

एक बार की बात है कि अकबर बीरबल के किसी काम से नाराज हो गया। होना स्वाभाविक भी है क्योंकि बादशाहों को अपने वजीरों की कद्र करनी भी नहीं आती और उनके बगैर गुजारा भी नहीं होता। बादशाह ने उसे देश निकाला दे दिया। चन्द दिनों में ही उसे नानी याद आ गई। बीरबल की जरूरत पड़ी। अब उसे कहां ढूंढे। किसी और विद्वान् से परामर्श कर एक योजना बनाई। राजधानी के निकटवर्ती कुछ गांव वालों को बुलाकर एक-एक बकरी दे दी और कहा कि उसे एक महीने बाद दरबार में पेश करना है। मगर याद रखना कि इसका वजन न बढ़ने पाए, न घटने पाए। ग्राम प्रमुख ले गए। बादशाह की दी हुई अमानत थी, अच्छी सेवा की, चारा दिया और सारी बकरियां मोटी हो गईं। लेकिन एक ग्राम प्रमुख की बकरी संतुलित रही। न मोटी हुई, न पतली हुई। अकबर हैरान होकर बोला—बोलो, तुम्हें बकरी को संतुलित रखने का नुस्खा किसने बताया। ये तुम्हारी अक्ल की उपज तो है नहीं। ग्राम का मुखिया कुछ बातें घड़ता, उससे पूर्व ही एक कोने में दुबके बैठे बीरबल ने ही कह दिया—हजूर मैंने। अकबर ने उसे गले से लगा लिया और कहा कि तुझे ढूंढने की तरकीब के तहत मैंने ये तरीका अपनाया था। अब आओ अपना पद संभालो।

कहने का मतलब है कि कोई नेता होना विद्वान् और ज्ञानवान् होने का प्रमाण नहीं है।

राजा कुमारपाल को जिंदगी भर एक ही मलाल सताता रहा कि मैं समग्र गुजरात का नायक होकर भी शुद्ध भाषा नहीं बोल सकता। बचपन और यौवन दोनों ही संघर्षों में बीते थे इसलिए पढ़ाई का क्रम ही

नहीं बन पाया। परंतु राजा बनने के बाद उन्होंने विद्वानों को खास तौर पर आचार्य हेमचन्द्र को अपने दरबार में ऊंचा स्थान दिया। महाराजा रणजीत सिंह, शिवाजी महाराज, बादशाह अकबर आदि अधिकतर शासक विद्याध्ययन की दृष्टि से पिछड़े ही रहे थे। लेकिन उन्होंने अपनी इस कमजोरी की भरपाई अपनी राजसभाओं में विद्वानों को बुलाकर की थी। कुछ राजनेता तो इतना हौंसला भी नहीं कर पाते। अपने सत्तामद में चूर हो जाते हैं तथा विद्वानों की बेकद्री भी कर देते हैं। भर्तृहरि ने लिखा है—**'प्रभवः स्मय दूषिताः'** सत्ताधीश घमंड में आकर ज्ञान की उपेक्षा करते हैं। मंदिर का पुजारी जिस नेता के पास गया था, उसने साफ तौर पर स्वीकार किया कि हमारा सम्मान तो नकली है। असली सम्मान तो शिक्षा प्राप्त, मनस्वी, मनीषी लोगों का होता है। वे ही सुखी होते हैं।

विद्वान् और चिंतनशील व्यक्ति किस तरह उलझी गुत्थी को सुलझा सकते हैं, इसका एक प्रसंग बहुत ही प्रेरणादायी है—ब्रिटेन में एडवर्ड सप्तम का शासन चल रहा था। उनसे कोई ऐसा अपराध हो गया जो दंडनीय था। उनके अपराध की जांच हो इसकी चर्चा पहले Hos e of Commos में हुई फिर Hos e of Lords में हुई। उनसे कोई फैसला नहीं हो सका तो उन्होंने निर्णय लिया—ये मामला Cou t को सौंप दिया जाए। न्यायालय ने भी Case की तहकीकात की। पता चला कि सम्राट् अपराधी है, सम्राट् ने भी कोर्ट के सामने अपना अपराध कबूल कर लिया। अब समस्या ये आई कि सम्राट् को सजा कैसे दी जाय? वह तो पार्लियामेंट तथा ज्यूडिशीयरी का अधिष्ठाता होता है। अंततः वहां के न्यायाधीशों ने पूरी Repr t तैयार की तथा ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जितने न्यायालय थे उनके पास उस रिपोर्ट की नकल भिजवाई तथा सबकी राय मंगवाई। निश्चित तिथि तक अपना मंतव्य भेजना था। राय सबकी पहुंची मगर किसी राय पर सर्वसम्मति या संतोष नहीं हुआ। सब पेशोपेश में थे। अंत में मद्रास हाईकोर्ट का पत्र पहुंचा। वह वहां के First Jg e Sir Timu h Swami Ay r का था। उन्होंने लिखा

था—'न्याय के सामने शासक और शासित समान हैं। दण्ड विधान में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। चाहे सम्राट् हो या सर्वशक्तिमान् ईश्वर, जो कसूर करे, वही दण्ड का भागी है। अपराध तो अपराध ही है। दण्ड मिले यही न्याय संगत है। सम्राट् को वह दण्ड दिया जाए जो कई शताब्दियों तक याद रहे। इसके लिए सुझाव है कि कम से कम पांच करोड़ सिक्कों पर उनका चित्र बेताज बादशाह के रूप में छापा जाए। उच्च वंश में जन्म लेने वालों को यही दण्ड है। अन्य दण्ड आवश्यक नहीं है।' उनकी राय पसंद आई और भरे दरबार में ये दण्ड सुनाया गया, सबने वाहवाही की।

लगभग यही बात नेता ने पुजारी से कही। पुजारी ने पूछा फिर आपकी नजर में कौन सबसे सुखी है। उसने कहा—मेरे ख्याल से तो हमारे शहर की उत्तर दिशा में एक विद्वान् पंडित जी रहते है। उनकी क्या शोहरत है। गरीब से गरीब, अमीर से अमीर सब उनकी स्तुति करते है। कहते हैं—ऐसा आदमी तो कहीं पूरी धरती पर नहीं मिलेगा। सब वेद शास्त्र कंठस्थ है। हर धर्मदर्शन का ज्ञाता है। बहुत भाषाओं पर अधिकार है। साक्षात् सरस्वती पुत्र है। उसके प्रति पूरे इलाके में गहरी श्रद्धा है। अतः आप उनके पास जाकर अपनी जिज्ञासा को तृप्त कर लें। ब्रह्मचारी पुजारी को तो धुन चढ़ी हुई थी कि मुझे सबसे ज्यादा सुखी आदमी ढूंढना है। उसने किसी से भी उसका पता पूछा तो झट सबने बता दिया। उस विश्व विख्यात विद्वान् के घर पहुंचा तो ठगा सा रह गया। वहां पुस्तकें बगलों में दबाए हुए विद्यार्थियों की मंडली तो देखी मगर कोई रथ पालकी, गाड़ी, बग्घी नहीं मिली। छोटी सी झोंपड़ी, साधारण सा सामान, उदास मुद्रा में बैठे विद्वान् महोदय की शक्ल देखकर पुजारी जी सहम गए। सोचने लगे—ये आदमी तो सुखी नहीं हो सकता, फिर भी हो सकता है कि अंदर कुछ गहरे राज समेटे हुए हो। बाहर की आकृति पर क्यों जाऊं? उस विद्वान् महाशय को नमस्कार करके पुजारी जी बैठ गए और कहने लगे कि मैं आपसे कुछ विशेष जिज्ञासा का समाधान लेना चाहता हूं। न मैं आपको जानता, न

आप मुझे जानते। मुझे तो एक नेता जी ने आपकी विद्वत्ता का बखान किया था इसलिए आपके पास आया हूं। मेरा सवाल है कि क्या आप परम सुखी मानव हैं या नहीं? पंडित जी ने अपने माथे पर हाथ रखा और कहने लगे—भाई, आप कहां गलत जगह पर आ गए। मेरा और सुख का तो 36 का आंकड़ा है। सुख तो इस घर का पता भी भूल गया है। ये ठीक है कि इस इलाके में मेरे जैसा कोई विद्वान् नहीं है। मगर पैसा धेला तो गांठ में नहीं है। सरस्वती और लक्ष्मी का तो पुराना वैर चला आया है। जहां सरस्वती होती है, वहां लक्ष्मी नहीं होती तथा जहां लक्ष्मी होती है वहां सरस्वती नहीं फटकती। दाने-दाने के लिए मोहताज हो जाता हूं। बीवी की कोई जरूरत पूरी नहीं हो पाती। कम से कम गृहस्थी का गुजारा तो आराम से चल जाए। अधिकतर भूखों सोना पड़ता है। बच्चों के भाग्य ही फूटे हैं जो ऐसे बदनसीब बाप के घर पैदा हुए। न उनके पास खिलौने है, न ठीक कपड़े हैं, न वक्त पर दवा दारू का इंतजाम हो पाता, न सही ढंग से खाना मिल पाता। कहते-2 पंडित जी का गला भर आया।

किसी विद्वान् की इससे ज्यादा दुर्दशा क्या होगी। पढ़े-लिखे लोगों की ये बहुत बड़ी समस्या रही है कि वे किसी से मांगने जा नहीं सकते, स्वाभिमान के कारण किसी सेठ साहूकार की जी हजूरी वे कर नहीं सकते। राजा महाराजाओं के दरबार में जाकर ठकुर-सुहाती वे नहीं कर सकते, विद्या का विक्रय वे नहीं कर सकते, इसीलिए बेचारों को जिंदगी भर अभावों से जूझना पड़ता है। वे उत्तम से उत्तम दर्शन सिद्धांतों की व्याख्या कर सकते हैं। उच्च कोटि की कल्पनाओं से ओतप्रोत कविताओं की रचना भी कर सकते हैं। मगर भूख और प्यास का इलाज उनके पास नहीं होता। निर्धनता से ग्रस्त विद्वानों पर किसी ने अच्छी फब्ती कसी है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, न पीयते काव्यरसः पिपासुभिः,
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं, धनमेवार्जय निष्फलाः क्रियाः ॥

जब बच्चे भूखे होंगे तो व्याकरण से उनकी भूख नहीं मिटेगी, जब उन्हें प्यास लगेगी तब कविताओं का रस उनके गले को तर नहीं करेगा, जब घर पर कर्जे की मार पड़ेगी तब छन्द शास्त्र के नियमों से बचाव नहीं होगा।'

इसलिए पंडित जी, ये सारी दिमागी घुड़दौड़ छोड़ और पैसा कमाने में जुट जा।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बांधवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके, यस्यार्थाः स जीवति ॥

अर्थ संपन्न व्यक्ति के मित्र यार होते हैं, अर्थ संपन्न के ही बंधु रिश्तेदार होते हैं। अर्थ संपन्न व्यक्ति को ही इंसान कहलाने का हक मिलता है तथा अर्थ संपन्न व्यक्ति ही जीवित रह सकता है।

The only crime on earth is poverty. गरीबी से बढ़कर कोई गुनाह नहीं, इससे बड़ा कोई अभिशाप नहीं। धनवान को कांटा भी चुभ जाए तो तहलका मच जाता है। गरीब शूली पर भी टंग जाए तो कोई पूछने वाला नहीं होता।

हम आहें भी भरें तो हो जाते हैं बदनाम,
वे कत्ल भी करें तो चर्चा नहीं होता।

आदमी ने आदिकाल से ही पैसे की पूजा की है। **राजा बड़ा न भैय्या, सबसे बड़ा रुपैय्या।**

पैसा ही भगवान् हो गया, पैसा ही ईमान,
पैसा मंदिर पैसा मस्जिद पैसा सकल जहान।
पैसे बिना आदमी मूरख हो कितना विद्वान्,
पैसे की है सारी महिमा जान सके तो जान ॥

पैसा होगा तो अच्छा मकान होगा, अच्छी पोशाक होगी, अच्छा मान-सम्मान होगा।

'जिसदे घर विच दाणे, ओहदे कमले वी सियाणे।'

उर्दू के महान् शायर ग़ालिब अपनी गरीबी के कारण किसी आयोजन में शामिल होने से कतराते थे। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर बंगाल के उच्चकोटि के विद्वानों में से एक थे। एक बार वे एक बड़े भोज में सम्मिलित होने गए। उस समय उन्होंने बड़े साधारण से कपड़े पहन रखे थे। द्वारपालों ने देखा तो समझ लिया कि कोई दरिद्र आदमी है। अंदर दावत का रंग भंग करेगा। उसे वहीं से वापस भेज दिया। ईश्वर चन्द्र जी घर गए, नए लिबास में वापस आए तो दरबान ने सम्मान किया क्योंकि उसे लगा कि ये अमीर आदमी है। कद्र किसकी है? आदमी की? नहीं, कद्र तो उसके पैसे की है। **'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति'** सारे गुण तो सोने में समाए हुए हैं। धन की गर्मी निकल जाए तो आदमी मृतप्रायः हो जाता है। द्वारपाल सम्मानपूर्वक अंदर ले गए। उन्हें भोजन परोस दिया गया। ईश्वर चन्द्र ने थाली के पास अपना कीमती शॉल रख दिया और कहने लगे—देख शॉल, मिठाई खा ले, नमकीन खा ले, पकवान खा ले, भात खा ले। उनके विचित्र व्यवहार से लोगों को मजा तो बहुत आया मगर कारण समझ नहीं आया। अंततः मेजबान आया और विनति करने लगा—'श्रीमान्, आप भोजन लेने की कृपा करें। नाहक कपड़ों को भोजन खाने की बात कहकर अपना उपहास उड़वा रहे हैं।' विद्यासागर ने कहा—'देखिए, मैं तो पहले भी आया था। तब मेरे पास ये कीमती शॉल नहीं था। तो मुझे इस दावत खाने में घुसने भी नहीं दिया। ये तो इस शॉल और कपड़े की मेहरबानी है जो मैं आप जैसे उच्चस्तरीय लोगों के बीच बैठा हूं। मैं तो इन कपड़ों का अहसानमंद हूं जो मेरी कुछ पहचान बनी है। क्या इतने उपकारी लिबास को भोजन भी नहीं खिलाया जाए।' पता नहीं मेजबान को कुछ समझ आया या नहीं। लेकिन ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे विद्वान् लोगों को

ये जल्दी ही पता लग जाता है कि बिना पैसे के उनकी क्या हैसियत और कीमत है।

पुजारी पंडित जी की कड़वी सच्चाई से परिचित हो रहा था। उसे समझ आ गया कि ये महाशय विद्या के क्षेत्र में तो लासानी हैं मगर कमाई के लिहाज से पिछड़े हुए हैं, इसलिए दुःखी हैं। अंततः पुजारी ने पूछ लिया– 'तो आप बताइए आपकी नजर में सर्वाधिक सुखी कौन है?' पंडित जी कहने लगे–'मेरे ख्याल से तो जो परिवार की चिंता से मुक्त हैं वह आदमी सुखी है। मुझे भी चिंताओं ने तभी घेरा जब मैंने अपना घर बसाया, धर्मपत्नी आई। उसके बाद बाल-बच्चों के लालन-पालन का बोझ सिर पड़ा तब मुझे पैसे की जरूरत पड़ी। जिसके पास परिवार के पोषण का Tension नहीं होता, उसे धन कमाने की फिक्र भी नहीं होती। वह सुख से चादर तानकर सो सकता है। मुझे किसी ने बताया है कि यहां से कुछ दूरी पर गांव हैं। वहां एक हनुमान मंदिर है। वहां का पुजारी ब्रह्मचारी है। सदा ही मस्त रहता है। उसे कोई चिंता फिक्र नहीं है।

''फिकर सबको खा गई फिकर सबकी पीर,
फिकर का फाका करे उसका नाम फकीर।

चाह गई चिंता मिटी मनुवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए शाहों का शहंशाह ॥''

ये जितने दुःख द्वंद्व में है, वे तो 'दो' के साथ है। वह अकेला है, अपने में है, दूसरे की तरफ देखता भी नहीं, इसलिए वह परम सुखी है। पंडित बोले चले जा रहे थे और पुजारी सुनता जा रहा था। उसे एक झटका सा लगा कि घूम-फिर कर सारी दुनिया की निगाह मेरी ओर मुड़ी है। मैं ही परम सुखी हूं। लेकिन ऐसा क्यों हुआ कि मैं बहिर्मुखी हो गया। मेरे अंदर दूसरों को देखने की, दूसरों की उपलब्धि की ईर्ष्या क्यों हुई?

भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है कि सुख-शय्या का एक पाया है स्वलाभ संतोष, परलाभ की अनाकांक्षा। जब मैं अपने में संतुष्ट था तो सुख सागर में डुबकियां लगा रहा था। मंदिर में पूजा करने आए सेठ की सुविधाएं देख मेरा मन विचलित हो गया, मैं अपने लक्ष्य से फिसल गया। मनुष्य के साथ ऐसा ही होता आया है। किसी विचारक ने बहुत अच्छा वाक्य लिखा है—'जो व्यक्ति वर्तमान की स्थिति की किसी और से तुलना करने लग जाए तब वह अपने सुख से भटक जाता है और उसकी स्थिति उस कस्तूरी मृग के समान होती है जो कस्तूरी पास होते हुए भी भटक रहा है। कस्तूरी मृग तो भटकता ही रहेगा पर मनुष्य को अपनी यथार्थता का भान हो जाए तो सुखी हो सकता है।'

पुजारी अपने मूल केन्द्र पर आ गया। अब उसे अपनी वर्तमान स्थिति में आनंद आ गया। उसे लगा कि सेठ औलाद के बिना दुःखी है। परिवार का मुखिया हकूमत न चलने से दुःखी है। नेता पढ़ाई की कमी को लेकर दुःखी है, तथा पंडित जी पैसे के अभाव में दुःखी है। दरअसल जिसे दुःखी होना है, उसे सुखी कौन बना सकता है? मैं भी ख्वामखाह उनकी तरह दुःखी होने की तैयारी करने लगा था कि आसानी से बच गया। उस पुजारी की समस्या का समाधान तो हो गया पर क्या हम लोगों की समस्या समाहित हुई है? पूछना होगा। घूमो फिरो, पर आना तो अपने पास ही होगा, तभी काम बनेगा।

एक श्रीमान् जी ऑफिस से थके हारे घर पर आए। कोट उतारा, जूते इधर उधर फैंके, कपड़े बदले और सोफे पर बैठकर श्रीमती जी से बोले—'भागवान पानी ला दे। प्यास लग रही है। श्रीमती जी का Mood p et था। बोली—'अपने आप पी लो।' श्रीमान् जी बहस करने के Mood में थे। पूछने लगे—'पानी कहां है?' श्रीमती जी बोली—'पानी है मटके में।' श्रीमान् जी ने फिर पूछा—'मटका कहां है?' श्रीमती जी का जवाब था—'रसोई में।' अब तक बात सीमा में थी। अब बात बतंगड़ बनने की ओर बढ़ी। श्रीमान् जी पूछ उठे—'रसोई कहां है?' श्रीमती

जी ने झट कह दिया—'रसोई है घर में।' फिर क्या था? यही एक प्रश्नोत्तर की शृंखला चल गई। पूछा कि— 'घर कहां है? मुझे ये बता।' श्रीमती जी बोली—'घर है चांदनी चौंक में।' 'तो ये समझा चांदनी चौंक कहां है?' तुरंत जवाब मिला—'चांदनी चौंक है दिल्ली में।' 'तो दिल्ली कहां है?' 'दिल्ली है भारत में।' 'भारत कहां है?' 'भारत एशिया में।' 'एशिया कहां है?' 'वह है धरती पर।' बात आगे बढ़ रही थी। पति ने पूछा—'धरती कहां है।' उसने Geog aby पढ़ रखी थी। इसलिए बोली—'धरती है पानी में।' फिर उससे नहीं रहा गया। पूछा—'पानी कहां है?' पत्नी ने कहा—'पानी है मटके में।' अब इस सवाल का अंत आ गया। कितना ही घुमा लो, पानी तो मटके में ही मिलेगा। पीना हो तो पी लो, नहीं तो व्यर्थ की बहसबाजी कितनी भी कर लो।

हर आदमी को अपने से पूछना है कि क्या मैं अपने को सुखी बनाना चाहता हूं या नहीं। ये निश्चित है कि सभी प्राणी सुख के अभिलाषी हैं। कोई भी दुःख नहीं चाहता लेकन सुख की जिम्मेदारी भी हर प्राणी की निजी है। उसे न देवता सुखी कर सकता है न दानव, न भगवान् न शैतान। उसे सुखी बनाती है उसकी सोच। एक आचार्य ने बड़ा सारभूत वक्तव्य दिया है—जो जैन समाज में सुप्रचलित है।

न वि सुही देवया देवलोए, न वि सुही पुढवीपई राया।
न वि सुही सेट्ठिसेणावई वा एगंत सुही मुणी वीयरागो ॥

देवलोक का देवता भी सुखी नहीं है; एकांततः Abs olu ely सुखी नहीं है। राजा महाराज भी पूर्णतः सुखी नहीं है। सेठ और सेनापति भी शत-प्रतिशत सुखी नहीं है। पर वीतराग भाव में रमण करने वला मुनि एकांततः सुखी होता है, सुखी हो सकता है।

भेद समझ का है सारा सुख साधन में नहीं है मन में।
सुख की धारा बहती देखी सीधे सादे जीवन में ॥

जो लोग सादगी का जीवन जीने लगते हैं, उन्हें उसी में आनंद आने लगता है। विलासिता, वैभव की बजाय वैराग्य और त्याग ही सच्चे सुख की नींव धरते हैं। सुविधा और साधनों में सुख होता तो चक्रवर्ती सम्राट् कभी राज्य का त्याग नहीं करते।

गांधी जी के जमाने की बात है। गांधी जी के त्याग के जादू ने भारत में बड़े-2 रईसों, धनाढ्यों, बुद्धिजीवियों तथा राजनेताओं के रहन-सहन के Stly e को बदल दिया था। जैसे उत्तर भारत में मोतीलाल नेहरू जैसे लोग बदले। ऐसे ही बंगाल में जीवन शैली को बदलने वालों में बैरिस्टर चितरंजन दास जी थे। उस जमाने में उनकी Practice की ये धूम थी कि वे अपनी वकालत से कभी-2 एक महीने में 50 हजार रुपये भी कमा लेते थे। इतनी बड़ी आमदनी होने से शौक भी विलासिता पूर्ण थे। अंग्रेजी रहन-सहन में ढल गए। लेकिन जब गांधी जी ने देश की स्वतंत्रता के लिए आह्वान दिया तो स्वराज्य की लड़ाई में शामिल हो गए। फिर भी दो आदतें पीछा कर रही थी—चाय और सिगरेट। एक बार गांधी जी से मुलाकात की तो बोले—'लीजिए आज से सिगरेट भी छोड़ता हूं।' उन्होंने छोड़ तो दी मगर पुरानी लत होने से बेचैनी बनने लगी। एक दिन उनकी बहन ने सलाह दी 'बापू के लिए तुमने सर्वस्व छोड़ दिया। ये क्या कम है? सिगरेट पीने या न पीने का आजादी से क्या सीधा Lik है।' उस समय उन्होंने कहा—'लोक शिक्षक को सौ फीसदी आदर्श का पालन करना चाहिए। सभी लोग उसे देख आदर्श की ओर मुड़ेंगे। मेरे लिए सिगरेट पीना ठीक नहीं है।'

जिन्हें त्याग में रस आ जाता है उन्हें संसार की ओर मोड़ना आसान नहीं होता।

लोगों ने कल्पना की है कि सुख स्वर्गों में होगा, मगर भूल गए वो स्वर्ग तो, मनुष्य के मानसिक संतोष में निर्मित होते हैं। ऐसा हुआ कि एक बार इन्द्र ने पृथ्वी पर घोषणा करवाई कि जिसे जो वस्तु कुरूप लगे उसे यहां आकर सुंदरता में बदलवा ले। लोगों का तांता लग गया। सब

कुरूपता को बदलकर सुन्दरता को ले गए। चंद दिनों तक यह परिवर्तन का दौर चला। इन्द्र ने सोचा—कहीं कोई व्यक्ति रह तो नहीं गया। वह तलाश में चला। चलते-2 उसने यह पाया कि एक कुटिया में साधु है। शायद इसे मेरी घोषणा के बारे में जानकारी नहीं है इसलिए ये साधु उस स्थान पर नहीं पहुंचा। इन्द्र ने पूछा—क्या आपको इन्द्र की घोषणा का पता है? उसने कहा—हां पता है। फिर आप क्यों नहीं आए। उस साधु ने जो उत्तर दिया वह सुनने लायक है। मनुष्य जीवन से सुन्दर अन्य कुछ नहीं है तथा आत्म संतुष्टि से बढ़कर कोई आनंद नहीं है। मेरे पास दोनों हैं। फिर मैं किससे क्या बदलता।

ये होता है आत्मचिंतन। वर्ना तो हर आदमी पागलों की तरह एक चीज को छोड़ता है, दूसरी को अपनाता है। उसे पता ही नहीं कि ये तो मोह का प्रभाव है जो असत् को सत् मान रहा है। अहितकर को हितकर मान बैठा है। जिसे अपने अंदर सुख मिल जाता है वह बाहर के पदार्थों में मत्था नहीं मारता। उसका परम सुख तो समता, शांति, संतोष, सरलता तथा स्वभाव रमणता में छिपा रहता है। दुनिया के दुःख द्वंद्व उसे बेचैन नहीं करते, उसकी शांति नहीं छीनते, उसके सुख को नहीं घटाते। संसार के बाहरी परिवेश में कैसी भी स्थितियां बने पर मोह विजेता, वीतराग साधक समभाव में जीता है। एक राजा और फकीर आपस में मित्र बन गए। फकीर महल के पास ही रहता था। जो राय देता वह Fit बैठती इसलिए राजा का उस पर विश्वास बढ़ता गया। एक बार दोनों एक बाग में बैठे थे। एक वृक्ष पर बड़ा सुंदर फल लगा हुआ था। राजा को करारी भूख लगी हुई थी। एकदम तोड़ लिया और उसकी छह फांकें बना ली। खुद खाने से पहले एक फांक अपने मित्र फकीर को देना नहीं भूला। फकीर ने खाई तो दूसरी फांक भी मांग ली। यों करते-2 पांच फांकें खा गया। अब छठी भी खाने को लपका तो राजा ने छीन ली। बोला—अच्छे मित्र हो, ये बची खुची फांक तो मैं खाऊंगा। जैसे ही राजा ने मुंह में डाली, मुंह कड़वा, कषैला हो गया और तुरंत थूक दिया। जब चित्त टिका तो पूछा—अरे मित्र! इतने कषैले

फल की 5 फांके तुम कैसे खा गए? फकीर ने कहा—आपके यहां मैंने कितने ही मीठे फल खाए हैं। अब मैं तुम्हें ऐसा फल कैसे खाने देता? और अपनी हालत तो तमाम द्वंद्वों में एक सा रहने की है जो अभी आपकी नहीं है। यानि लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि में समभाव होना सच्चे तप का फल माना जाता है। हमारे लिए कड़वा भी मीठा है, चोट भी सन्मान है, दुःख भी सुख है।

रगड़-रगड़ कर बन गए पत्थर शालिग्राम।
जग में पूजा न मिले बिना घिसाए चाम ॥

कुछ मानवों की विडम्बना है कि वे सुखों की खान में रहकर भी दुःखों की तलाश कर लेते हैं। ये उनकी किस्मत का खेल नहीं है, अपितु उनकी सोच का परिणाम है। किसी ने ये ठान रखा हो कि मुझे सुखी रहना है तो संसार की कोई ताकत उसे दुःखी नहीं कर सकती। ठीक इसी तरह जिस आदमी ने ये सोच लिया है कि मुझे दुःखी रहना है उन्हें भगवान् भी सुखी नहीं कर सकता। Th y mn mer wh n th sky is clear ad whl ly b ig to iv ew. जब व्योम और क्षितिज प्रकाश पुंजों से भरपूर हो, तब भी निराशावादियों को अंधेरा नजर आता है।

एक भिखारी के पास झोला था। उसे कंधे पर लटकाए घूमता था। जो कुछ भीख में मिलता उसे झोले में डाल लेता। एक रात शंकर जी ने उसे दर्शन दिए और कहा—'कल सूर्योदय के बाद झोले में जो कुछ डालोगे सोने का हो जाएगा पर ध्यान रखना कि अति लोभ मत करना।' तारे गिन-2 कर रात बिताई। दिन निकलते ही झोले में अनापशनाप चीजें डालने लगा। हर चीज सोना बनने लगी। अब तो उछलने लगा। चिल्लाने लगा—'मैं अमीर हो गया, मैं अमीर हो गया।' इस प्रक्रिया में ये भी भूल गया कि तेरा थैला बिल्कुल बोदा है तथा सोने का बोझ बढ़ता जा रहा था। वह तो उसमें सामान भरता ही गया। अंततः अधिक भार से थैला फट गया और सोना जमीन पर गिर गया। गिरते ही मिट्टी बन गया। सारी सिद्धि, सब वरदान समाप्त हो गए।

क्या यही नियति ज्यादातर लोगों की नहीं है? कितना उत्तम मानव जीवन मिला। आर्य भूमि मिली, सुंदर शरीर, पांच इन्द्रियां मिली, एक-एक सांस कीमती मिली। यहां तो मिट्टी को सोना बनाने का मौका था। मगर हम बने बनाए सोने को मिट्टी में मिला रहे हैं। तीव्र राग द्वेष का कूड़ा कर्कट अपने भेजे में भरे रहते हैं। उनसे आजाद होने की चेष्टा नहीं करते।

निगाह नापाक, रुह मैली, जबान झूठी, ख्याल गंदे।
कैसा ये जमाना है, न वो खुदा है, न वो हैं बंदे ॥

जिंदगी एक कूड़ाघर बन चुका है। चारों ओर अशुचि गंध फैल रही है। अपने पराए सब हमसे दूर रहना चाहते हैं क्योंकि हमारे स्वभाव, व्यवहार, बोलचाल एवं काम करने की शैली में बेगानापन झलकता है।

आपको एक घटना सुनाऊं—बुखारा शहर में एक मौलवी रहता था। नेक स्वभाव का था। लोगों में उसकी अच्छी तारीफ थी। उसने जानबूझकर किसी का अहित नहीं किया। मगर एक आदमी उससे बहुत चिड़ता और जलता था। ये जलन और कुढ़न की आदत ऐसी भयंकर है कि सामान्य आदमियों को तो छोड़ो, बड़े-2 ज्ञानी और संत महन्तों को भी इसने नहीं बख्शा। नीतिशतक का तो पहला वाक्य ही इस ईर्ष्या का खुलासा कर रहा है—**'बोद्धारो मत्सर ग्रस्ताः'** पढ़े-लिखे शिक्षित लोग ईर्ष्या से ग्रस्त रहते हैं। धार्मिक आदमी भी आपस में ईर्ष्या करते हैं।

राम वालों को इस्लाम वालों से बू आती है,
इस्लाम वालों को राम वालों से बू आती है ॥

मौलवी साहब को पता था कि वह बंधु नाहक ईर्ष्या का शिकार है। सोचा कि उससे प्रेम स्थापना हो जाए तो उसे भी शांति रहेगी तथा माहौल भी खुशनुमा रहेगा। एक सेवक के हाथ में कुछ उपहार देकर मिलने का निमंत्रण भिजवा दिया। सेवक ने जाकर कहा कि मौलवी

साहब ने आपको बुलाया है तथा आपके लिए तीन खास चीजें भिजवाई हैं—एक आटे का थैला, दूसरा साबुन का थैला तथा तीसरा चीनी का थैला आपको देने के लिए कहा है। वह आदमी तो विजेता की तरह फूल गया और कहने लगा—ठीक है, हम आज रात को मिलने आएंगे। नौकर चला गया। वह आदमी तो बुखारा के हाकिम के पास पहुंचकर शेखी बघारने लगा। देखिए, मौलवी मुझसे डर गया है। दोस्त बनाने के लिए प्रयास कर रहा है। उसने तीन सौगातें भी भिजवाई हैं। जब उसने उन सौगातों को नाम बताया तो हाकिम ठहाका लगाकर हंसने लगा। कहने लगा—मूर्ख, तू मौलवी साहब की महानता तथा अक्लमंदी को कभी नहीं समझ सकेगा। उसने आटे का थैला भिजवाकर ईशारा किया है कि पेट भरकर आना। भूखा आएगा तो लड़ने का मन करेगा। साबुन भिजवाकर कहलवाया है कि साफ होकर आना। गंदा रहेगा तो बिना वजह सिर पर चढ़ेगा। चीनी भिजवाकर संदेश दिया—अपनी जुबान मीठी बनाकर आना। मैं दोस्ती करने बुलवा रहा हूं। कड़वी बातों को सुनने के लिए नहीं। तू उसकी गहराई को समझ ले, फिर तेरा दिमाग भी ठीक हो जाएगा। अब उस आदमी को लगा कि मैं उस मौलवी से ख्वामखाह वैर, द्वेष, ईर्ष्या पाले हुए हूं। मैं अपने कारण से दुःखी हूं। उसने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा। मैं अपने इस दुर्भाव को दूर कर दूं तो सुखी हो जाऊंगा। उसे समझ आ गई।

भगवान् भी यही फरमा रहे हैं कि राग, द्वेष, मोह दूर होते ही दुःख दूर हो जाएंगे। जो इस सच्चाई को समझ सकेंगे उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

13. बुझाओ इस प्यास को

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो, मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स न किञ्चणाइं ॥

दुःख मिटाने के लिए मोह को मिटाना होगा तथा मोह को मिटाने के लिए तृष्णा को समाप्त करना होगा। तृष्णा को समाप्त करने के लिए लोभ को जीतना होगा तथा लोभ को जीतने के लिए हर वस्तु का अधिकार छोड़ना होगा।

मानव की चेतना मूर्च्छित, मोह ग्रस्त क्यों हो गई है। इसे इतना नशा क्यों चढ़ा हुआ है। इसे अपना पराया, हित अहित का अहसास क्यों नहीं हो पा रहा? इसका समाधान कौन दे सकता है? वही देगा, जो आत्मा के प्रत्येक तल को छान चुका हो, जिसे आत्मा के प्रत्येक प्रदेश के प्रत्येक गुण की जानकारी हो। जिसे आत्म गुणों की जानकारी नहीं होगी वह आत्मा पर छाई बीमारी और उसके ईलाज का रास्ता कैसे बता सकता है। हमारा परम सौभाग्य है जो हमें ऐसे सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकरों का शरणा मिला है जो आत्म तत्त्व के महान् ज्ञाता थे। भगवान् महावीर को ऋजुबालिका नदी के तट पर वैशाख सुदी दशमी के दिन केवल ज्ञान हुआ। एकादशी के दिन पहला समवसरण मध्यम पावा में लगा। तब अपने युग के धुरंधर विद्वान् इन्द्रभूति गौतम को प्रभु ने आत्मतत्त्व

का ही बोध करवाया था। भगवान् के पास आने से पूर्व गौतम स्वामी को 4 वेद, 6 वेदांग, निघंटु, इतिहास आदि समग्र विद्याओं का ज्ञान था। लेकिन आत्मा के ज्ञान के बिना सब कुछ अधूरा था, मिथ्या था। भगवान् जानते थे कि एक आत्म तत्त्व को जानने से समग्र समस्याओं का समाधान हो सकता है और इसके बिना जिंदगी समस्या ही समस्या है। आचारांग में प्रभु महावीर ने फरमाया है—**'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ'** जो केवल अपने आत्मतत्त्व को जान जाता है वह समग्र सृष्टि को जान जाता है। आत्मा की मुख्य समस्या है दुःख। दुःख का कारण है मोह और मोह का कारण है तृष्णा। तृष्णा का शाब्दिक अर्थ है प्यास। तृष्णा को संक्षेप में तृषा भी कहते हैं तथा हिन्दी में तिस भी कहते है। शरीर का स्वभाव है कि जब इसमें पानी की कमी हो जाती है तो यह पानी की मांग करता है। पानी की यह मांग ही तृष्णा है। यदि शरीर को पानी न मिले तो शरीर मूर्च्छा की ओर बढ़ने लगता है और पानी की कमी ज्यादा ही हो जाए तो शरीर निढाल होकर गिर जाता है, पूर्ण बेहोश भी हो जाता है और कभी-2 न संभाला जाए तो मौत के मुंह में भी चला जाता है। जैसे शरीर की तृष्णा-प्यास शरीर को मूर्छित, मृत कर देती है, ऐसे ही मन की तृष्णा अंतरात्मा को मोहग्रस्त कर देती है। संसार की, संसार के पदार्थों की अंधाधुंध मांग भवतृष्णा भी कहलाती है। इस भवतृष्णा को विष-लता की उपमा दी गई है।

केशी स्वामी को श्री इन्द्रभूति गौतम ने फरमाया था—

भवतण्हा लया वुत्ता भीमा भीम फलोदया,
तमुद्धरित्तु जहानायं विहरामि अहं मुणी।[1]

हे मुनीश्वर! भयंकर फल देने वाली भवतृष्णा की लता को उखाड़ने के बाद मेरी जीवन यात्रा सुगमता से आगे बढ़ रही है। जब तक मैं इस बेल के फल खाता रहा तब तक मोहग्रस्त होकर दुःख द्वन्द्वों का शिकार होता रहा।

---

1 उत्तराध्ययन 23 अध्ययन 48 गाथा

उज्जैनी नगरी का धनाढ्य सेठ नई हवेली बनवा रहा था। जयपुर के मशहूर कारीगर बुलाए गए थे। सेठ सब मिस्त्रियों, राज मजदूरों को आदेश दे रहा था, 'सुनो, हवेली को इतना सुन्दर बनाना है कि इसकी चमक सात पीढ़ी तक फीकी न पड़े। आते-जाते लोग सेठ की हवेली को देखते और सराहते जाते थे। वह भी उनकी प्रशंसा सुनकर बाग-2 हो जाता और जोर से कारीगरों को हुक्म देता—'देखना, हवेली की चमक सात पीढ़ी तक कायम रहनी चाहिए। ऐसा Pain इसमें करना है।' उधर से एक मुनिराज गुजर रहे थे। सेठ की आवाज सुनकर हंस पड़े। उन्हें कुछ विशिष्ट ज्ञान था। उन्हें पता था कि इस सेठ की उम्र कुल सात दिन शेष है। फिर भी अपनी मृत्यु से अनभिज्ञ होकर सात पीढ़ियों की फिक्र कर रहा है। मुनिराज को लगा कि ये मोह से ग्रस्त है। मोह और भविष्य के प्रति तीव्र लालसा—इन दोनों का आपस में गहरा संबंध है। यदि ये सेठ भविष्य के प्रति इतना आसक्त न होता तो अपनी मौजूदा जिंदगी के आखिरी दौर से नावाकिफ न होता। मानव मन की इस अल्पज्ञता पर मुनि को हंसी आ गई। ये हंसी इतनी तेज थी कि सेठ को सुनाई दे गई। कुछ संत महात्मा इतनी सहज जिंदगी जीते है कि उनकी हंसी भी अट्टहास बन जाती है। वे अपनी हंसी को छिपा भी नहीं पाते। चीन में Th ee lag g sain s का जिक्र मिलता है। उनका सारा जीवन हंसते-2 बीता था। वे न कोई उपेदश देते थे न कोई आदेश देते थे। बस जहां जाते, हंसते रहते और उनकी हंसी से प्रभावित लोग भी हंस पड़ते थे। ये उनका योग था, साधना थी, ध्यान था। उस हंसी में लोग अपने गमों को गुम कर देते थे। आजकल तो जगह-2 Lag er Clb भी खुल गए हैं। लोग सुबह-2 पार्क में इकट्ठे होकर जोर-2 से हंसते हैं। चलो, इसी बहाने कुछ देर के लिए सही वे हंसते तो हैं, वर्ना आज के जमाने में हंसी बची ही कहां है?

ढूढंते हैं हम बहाना मुस्कराने के लिए,
इक नया ही आसमां हो गुनगुनाने के लिए ॥

लड़के की शादी हो रही थी। फोटो खींचे जा रहे थे। कैमरामैन बार-2 दूल्हे को कह रहा था-कृपया मुस्कुराइये। दूल्हा मुस्कुराने की कोशिश कर रहा था। पर कैमरामैन फिर कहने लगा-अच्छी तरह मुस्कुराइये। आखिर दूल्हे ने पूछ ही लिया—आप एक ही बात बार-2 क्यों कह रह हैं? कैमरामैन ने कहा—जनाब, शादी के बाद कभी फोटो देखकर ये तो आश्वासन कर लोगे कि हम भी कभी जिंदगी में हंसे थे।

लिहाजा, मुनिराज तो हंसकर आगे चले गए, लेकिन मुनि जी की वह हंसी सेठ के सीने को चीर गई। कहां तो लोग आ-आकर तारीफ के पुल बांधते हैं, मकान के गीत गाते हैं और कहां ये संत उस पर हंस रहे हैं। उस सेठ को क्या पता था कि ये फक्कड़ संत हैं। किसी की जी हजूरी नहीं करते। उसका वास्ता ऐसे लोगों से तो पड़ा था जो खुशामद करना जानते हैं। खुशामदी, चापलूस लोगों को अपने स्वार्थ से मतलब है। उन्हें न किसी सेठ से लेना देना, न किसी नेता, लीडर से। बस खुशामद के बोल बोलकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। एक कवि ने बड़ा जबरदस्त व्यंग्य किया है—

सदा काम से जी चुराते हैं चमचे,
कमाती है दुनिया व खाते हैं चमचे।
पतीली के तल को चलाती है कड़छी,
तो होठों की लज्जत उठाते हैं चमचे।
होता अगर बोस जो भोला भाला,
अंगुलि पे उसको नचाते हैं चमचे।
अगर हो साहब का मिजाज कुछ गर्म,
माई बाप उसको बनाते हैं चमचे।
अगर आए लीडर पे कोई मुसीबत,
तो बढ़कर के नारे लगाते हैं चमचे।
साबित करे दिन में वो चांद तारे,
रातों को सूरज उगाते हैं चमचे।

इनकी तरफ से जियो या मरो तुम,
सदा खैर अपनी मनाते हैं चमचे।
जब हो कहीं पर Strike का चक्कर,
तो दोनों तरफ से खाते हैं चमचे।
यदि Office में हो कोई Tea party,
हलवा Free का उड़ाते हैं चमचे।
सत्य बात कहने की है आदत हमारी,
कइयों को बुद्धू बनाते हैं चमचे।

आजकल सेठ साहूकार, नेता या अफसर ही नहीं संत महात्मा भी खुशामद के भूखे हो गए हैं। चन्द गृहस्थ उनकी खुशामद करके उनसे तंत्र-मंत्र, धागे ताबीज ले लेते हैं और गृहस्थों से पैसे ऐंठने के लिए फिर संत उनकी खुशामद करते हैं।

हमारा सौभाग्य रहा कि हमें ऐसे गुरु मिले जिन्होंने न किसी की खुशामद की, न किसी की खुशामद सुनी। उनसे हमें खुद्दारी का सबक सीखने को मिला है। हम इज्जत एक बालक की भी करेंगे पर खुशामद खुदा की भी नहीं करेंगे। कुछ लोग समझते होगें कि सुदर्शन मुनि जी हमारी खुशामद करेंगे। वे गफलत में हैं। खुशामद ही करनी होती तो अपने माता-पिता की करते जिन्होंने हमें जन्म दिया। किसी सड़ी धोती वाले की खुशामद से हमें क्या मिलेगा। हमें कुछ सेठों से लेना भी क्या है। न हमें कोई किताब छपवानी, न पोस्टर बनवाने, न पत्रिकाएं चलवानी, न कोई संस्था खड़ी करनी। पूज्य गुरुदेव आखिरी वक्त में इन झंझटों, झमेलों से हमें मुक्त कर गए थे।

तो खैर, उज्जैनी का सेठ मुनि की हंसी से तिलमिला गया। पार तो उसकी कुछ बसाई नहीं। कर भी क्या सकता था। मुनि जी आगे चले गए और वह अपने काम में व्यस्त हो गया।

दोपहर का समय था। सेठ घर पर खाना खाने के लिए आया हुआ था। थाली सजी हुई थी। गोद में नन्हा मुन्ना बेटा बैठा था। तभी उस मुनि का आगमन हो गया। संयोग ऐसा बना कि जैसे ही मुनि En er हुए, तभी छोटे बच्चे ने सूसू कर दिया और उसके कुछ छींटे सेठ की सब्जी में गिर गए। सेठ बिना किसी संकोच और शर्म के खाना खाता रहा, मानो सब्जी में घी का छौंक लग गया हो। सेठ की इस पुत्र मोह की स्थिति देख मुनि जी अपनी हंसी नहीं रोक सके। हालांकि किसी के घर जाकर हंसना तो गैर मुहज्जब था। लेकिन उन्हें उस बच्चे और सेठ के पुराने रिश्ते दिखाई दे रहे थे, जो कि दुश्मनी भरे थे। आज सेठ उन सबको भुला बैठा था। और उसके पेशाब की बूंदों को भी अमृत समझकर चाट रहा था। मुनि ने आहार लिया और चले गए। सेठ को मुनि की दूसरी हंसी भी बहुत खटकी पर घर आए संत को कुछ कहने की जुर्रत नहीं हुई। भोजन करके सेठ अपनी दुकान पर चला गया। बात आई गई हुई। दिन का चौथा पहर था। सेठ अपनी दुकान में बैठा था। अचानक एक बकरा मैं-मैं करता हुआ दुकान में घुस आया और सेठ की तरफ कातर दृष्टि से देखने लगा। इस उम्मीद से कि शायद मुझे ये बचा ले। उस बकरे के पीछे-2 ही कसाई आ गया। वह बकरा उसका था। कसाई उस बकरे को अपनी ओर खींच रहा था। बकरा अपने पैर जमाकर सेठ की ओर निहार रहा था। बकरे की निरीह अवस्था देखी तो सेठ का दिल पसीज गया। उसने कसाई से कहा—तू इस बकरे को छोड़ दे। मैं तुझको एक रुपया दे दूंगा। कसाई बोला—चार रुपए में तो मैं खरीद कर लाया हूं। यदि पांच रुपए देता हो तो मैं इस बकरे को जिंदा छोड़ दूंगा। वर्ना ये मेरे छुरे के नीचे तो आएगा ही आएगा। बकरा कसाई से नहीं सेठ से प्राणों की भीख मांगता सा प्रतीत हो रहा था। सेठ भी चाहता था कि बकरा छूट जाए मगर उसके लिए पांच रुपये छोड़ना बड़ा भारी पड़ रहा था। बड़ी मुश्किल से दो रुपए देने को तैयार हुआ। कसाई टस से मस नहीं हुआ। वह घाटे का सौदा क्यों करता? उसने पांच रुपए से कम लेने से साफ मना कर दिया। देने को ज्यादा

भी दे सकता था। मगर अब तो उसकी इज्जत का सवाल हो गया था कि एक अदना सा कसाई अपनी बात पर अड़ गया तो क्या मैं इसकी बात मान लूं? इस नाक का पता नहीं कब बीच में आ जाए। कभी ये नाक दान करवाती है तो कभी रुकवा देती है। ऐसे तो थोड़े लोग होते हैं जो विशुद्ध परोपकार की भावना से दान देते हैं।

भारत विभाजन से पूर्व की बात है कि कराची में जन सहयोग से एक सार्वजनिक चिकित्सालय का निर्माण हो रहा था। ये निर्णय किया गया कि जो दानवीर दस हजार या उससे अधिक दान राशि देगा उसका नाम संगमरमर के पत्थर पर लिखवाया जाएगा। जमशेद जी मेहता एक धनी मानी व्यापारी थे। उन्होंने भी पुण्य का कार्य समझ दान देने का मन बनाया। एक सज्जन ने नामपट्ट का उल्लेख किया। जमशेद जी ने तत्काल 9950 रुपये निकालकर दे दिए। वह सज्जन कहने लगा—संभवतः गिनने में गलती हो गई है, यदि 50 रुपये और दे दें तो आपका नाम संगमरमर पर अंकित हो जाएगा। जमशेद जी ने गंभीरता से कहा—नाम पट्ट लगवाकर मैं अपना विज्ञापन नहीं करवाना चाहता। समाज सेवा के साथ लोकैषणा को जोड़कर मैं उसके स्तर को नहीं गिराऊंगा।

उधर सेठ ने उस कसाई को पांच रुपए देने से इंकार कर दिया तो कसाई झटके से बकरे को खींचकर कत्लखाने की ओर ले चला। बेचारा बकरा मैं-मैं करता रहा। उसके करुण रुदन पर न कसाई को तरस आया न सेठ को।

दरअसल तृष्णा के वशीभूत हुआ मानव भूल ही जाता है कि हमें क्या करना है, क्या नहीं करना है? क्या जीवन में महत्वपूर्ण है, क्या महत्वहीन है? तृष्णा ने उनकी सोच को काठ मार दिया होता है। क्या 5 रुपये थे—न सेठ को कर्तव्य बोध जागृत हुआ न कसाई के मन में दया का प्रसार हुआ। तृष्णा का डंक सांप के डंक से भी विषैला है।

पं. चन्द्रशेखर नामक एक युवा, ब्राह्मण पुत्र काशी से न्याय, व्याकरण, धर्मशास्त्र, वेदान्त आदि का गहन अध्ययन कर घर लौटा था। उससे किसी ने पूछा—'पाप का बाप कौन है?' पंडित जी एकदम सकते में आ गया। उसे ये प्रश्न ध्यान ही नहीं आया था। उसने फिर ग्रंथ टटोले, उत्तर वहां भी नहीं मिला। चूंकि उनकी प्रकृति जिज्ञासु थी, इसलिए समाधान पाने की प्रवृत्ति भी थी। प्रकृति के अनुसार ही प्रवृत्ति होती है। उसे काशी में पुनः जाना पड़ा ताकि ज्ञान हो सके कि पाप का बाप कौन होता है? वहां किसी से समुचित उत्तर नहीं मिला। फिर सोचा—इसी बहाने तीर्थयात्राएं कर लूं। जिन-2 तीर्थों पर विद्वान्, पंडित, संत, महात्मा मिले उनसे चर्चा की, पर आत्मिक संतुष्टि नहीं हुई। पंडित जी देशाटन करते-2 एक दिन पूना के सदाशिव पेठ से जा रहे थे। वहां विलासिनी नामक एक वेश्या ने अपने महल के झरोखे से पंडित जी के उदास चेहरे को देखा। दिमागदार तो थी ही। ये जरूरी नहीं है कि दिमाग केवल ब्राह्मणों और बणियों के पास ही होता है। दूसरी जाति के लोग भी दिमागदार हो सकते है और ऐसा भी नहीं है कि अकल सिर्फ मर्दों के पास होती है औरतें भी कितनी बार मर्दों से ज्यादा अक्लमंद और होशियार पाई जाती हैं। विलासिनी तो वैसे भी बड़ी चुस्त और चालाक थी। वह आदमी की चालढाल से उसका अंदर का X-Ray खींच लेती थी। ताड़ गई कि पंडित जी किसी मानसिक समस्या से ग्रस्त हैं। उसने अपनी दासी से कहा—ये पंडित जी रंगढंग से विद्वान् नज़र आता है पर साथ ही उदास है। इसका पता लगाकर आ। दासी तत्काल नीचे आई। पंडित जी को प्रणाम किया। कहने लगी—महाराज, मेरी स्वामिनी पूछ रही हैं कि आप उदास क्यों हैं? चन्द्र शेखर पंडित ने कहा—मुझे कोई रोग नहीं है, न ही मुझे धन की इच्छा है। वे मेरी कोई सहायता नहीं कर सकतीं। ये तो कोई शास्त्रीय गुत्थी है जो मेरे दिमाग में घूमती रहती है। दासी ने फिर आग्रह पूर्वक कहा—'यदि कोई हानि न हो तो आप अपने मन की बात बता दें।' पंडित जी ने अपना प्रश्न दासी को बता दिया। थोड़ी सी देर में दासी मालकिन के

पास जाकर वापस पंडित जी के चरणों में हाजिर हो गई, बोली—'मेरी स्वामिनी कहती है कि आपका प्रश्न बहुत सरल है। पर इसका उत्तर जानने हेतु आपको कुछ दिन यहां ठहरना पड़ेगा। पंडित जी ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वेश्या ने उनके लिए अलग भवन दे दिया और उनके पूजा पाठ भोजनादि की समुचित व्यवस्था कर दी। चन्द्र शेखर जी बड़े कर्मनिष्ठ, शौच प्रधान ब्राह्मण थे। स्वयं जल भर कर लाते, स्वयं भोजन बनाते थे। विलासिनी प्रतिदिन प्रणाम करने आती थी। एक दिन उसने विनति की—'भगवन् आप स्वयं अग्नि के समक्ष बैठकर भोजन बनाते हैं, आपको धुआं लगता है, इससे मुझे कष्ट होता है। आप आज्ञा दें तो मैं नित्य स्नान करके, पवित्र वस्त्र पहनकर भोजन बना दिया करूं। मुझे आप इतनी सेवा का सौभाग्य प्रदान करें तो मैं प्रतिदिन दस स्वर्णमुद्राएं दक्षिणा के रूप में आपको अर्पित करने का भाव रखती हूं। आपकी इस दया से मुझ अपवित्र नारी का भी उद्धार हो जाएगा।' पंडित जी को हिचक तो हुई किंतु स्वर्ण मुद्राओं की पेशकश ने विचार बदल दिया। इसमें हानि क्या है? बेचारी शुद्ध होकर ही भोजन बनाएगी, फिर शुद्धि-अशुद्धि तो मन माने की है। दूसरी नारियां क्या शुद्ध हैं? तथा पुरुष में नारी की अपेक्षा अधिक शुद्धि का होना भी एक मान्यता ही तो है। ये तो सामाजिक पाबंदियां हैं जो हम पर लागू कर दी गई हैं। यहां कोई समाज तो है नहीं जो उन बंधनों को मंजूर करूं। कुछ दिन तक दस-2 मोहरें मिल जाएंगी तो वर्षों तक की समस्या का समाधान हो जाएगा। इन विचारों के तहत उसने विलासिनी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वेश्या ने पूर्णशुद्धि के साथ खाना बनाया। पंडित जी के पैर धुलवाए। सुंदर पट्टा बिछाकर पकवानों से भरा थाल परोस दिया। पंडित जी जैसे ही खाने को लिए हाथ बढ़ाने लगे, विलासिनी ने थाल पीछे सरका लिया। पंडित जी चकित हो गए। खुद वेश्या ही बोल उठी—'मुझे क्षमा करें, मैं एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को आचारच्युत नहीं करना चाहती। मैं तो आपके प्रश्न का उत्तर देना चाहती थी। जो दूसरे का लाया जल भी काम नहीं लेते, वे शास्त्रज्ञ, सदाचारी ब्राह्मण जिसके वश में होकर

एक वेश्या का बनाया हुआ भोजन स्वीकार करने को उद्यत हो गए, वह लोभ ही पाप का बाप है। पंडित जी को शर्म तो बहुत आई मगर एक प्रश्न का Practical उत्तर मिला गया जो कि Th oretical उत्तरों से ज्यादा प्रामाणिक, स्थायी और सच्चा था।

जब उज्जैनी के सेठ ने 5 रुपये के लोभ में बकरा कसाई को थमा दिया उसी समय वही मुनिराज उसकी दुकान के बगल से गुजर रहे थे। उन्होंने सारा नजारा देखा और नजारे के भीतर छिपे अन्य रहस्यों का पर्दा उनके ज्ञान चक्षुओं से हट गया। उन्होंने देखा कितना स्वार्थमय संसार है। अपने पिछले जन्म के पिता को 5 रुपये के लोभ में कसाई के हाथ में सौंप रहा है। हाय री! लोभ की विडम्बना। और फिर जोर से हंस पड़े। हंसी का फव्वारा फूटा ही था कि सेठ का तन-बदन झुलसने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि ये संत मेरी हर बात पर हंसकर मेरे जख्मों पर नमक छिड़क रहा है। इनसे खुलकर बात करनी होगी। नहीं तो, इनका ये रवैय्या बदलेगा नहीं। दुकान से तुरंत बाहर आया। बिना किसी वंदना नमस्कार के कहने लगा—मुझे आपसे कुछ बात करनी है। संत बोले—ये तो मुझे पहले ही पता था। मगर आपसे निवेदन है कि आप रात को उपाश्रय में आ जाना और वहीं अच्छे खुलासे के साथ बातें हो जाएंगी। यहां राह चलते-2 सही समाधान नहीं होगा। इतना जरूर है कि हमारा इरादा आपको लज्जित और अपमानित करने का नहीं रहा। कुछ अंतरंग सी बातें हैं, वे बैठकर ही होंगी। सेठ को कुछ शांति पड़ी। सूर्यास्त के पश्चात् प्रतिक्रमण की प्रक्रिया हो चुकी तब वह अकेला गुरुचरणों में पहुंचा। यथोचित विनय करके चरणों में बैठ गया। फिर उसने अपनी मानसिक शंका का समाधान लेने के लिए उनसे निवेदन किया।

वैसे भी शंका को मन में रखने की बजाय पूछ लेना अच्छा रहता है। कुछ लोग बात को पूरी तरह समझते हैं नहीं, केवल आधी अधूरी बात सुनी, अस्पष्ट सी घटना देखी और मन में शंका बैठा लेते हैं। **'संका**

सम्मत्तं नासेइ' यदि शंका लम्बे समय तक अंदर पड़ी रहे तो समकित को नष्ट कर देती है। सम्यक्त्व के पांच अतिचारों में पहला अतिचार शंका है। शंका मन का कांटा है जो मन को चैन से नहीं बैठने देता। पैर में कांटा चुभा रहे हो आदमी Prop rly चल नहीं सकता, रात को सो नहीं सकता। ऐसे ही मन में कोई शंका घुस जाए तो निकले बगैर दुःखी करती रहेगी। **'ससर्पे च गृहे वासः'** किसी घर में सांप दिखाई दे जाए तो कोई उस घर में सो नहीं सकता। ऐसे ही शंका का हाल है। ये मन के कोने में रहेगी तो धर्म, कर्म, विनय भक्ति सबको अस्त-व्यस्त करती रहेगी।

एक क्षेत्र के श्रावक बड़े गुरुभक्त थे। संतों की सेवा करते, प्रवचन सुनते, पता चलता तो दूर तक लेने जाते, विहार के समय छोड़ने जाते। ये सब क्रियाएं श्रद्धालु श्रावकों का भूषण होती हैं। एक बार किसी प्रख्यात मुनि संघ का नगरी में आगमन होने जा रहा था। प्रमुख श्रावक-श्राविकाएं उनको लेने के लिए आगे जा रहे थे। उसी दिशा से एक घुड़सवार आया। उससे श्रावकों ने पूछ लिया—क्या तूने रास्ते में हमारे गुरु देखे हैं। वे कितनी दूर हैं। घुड़सवार ने कहा—यहां से 2-3 मील की दूरी पर वे नदी में पानी पी रहे थे। ये बात सुनते ही श्रावकों का माथा ठनक गया कि वे साधु तो कच्चा पानी पी रहे थे। वे अपना महाव्रत नहीं निभा रहे तो हम उनकी सेवा भक्ति क्यों करें? सभी श्रावक-श्राविकाएं वहीं से मुड़ लिए और अपने-2 काम धंधों में लग गए। किसी ने ये नहीं सोचा कि एक अनजान घुड़सवार की बात पर विश्वास करने की बजाय खुद सारी स्थिति का जायज़ा लेते। कुछ लोग धार्मिक तो होते हैं मगर गंभीर नहीं होते। जल्दी ही आपे से बाहर हो जाते हैं। बिना निर्णय किए फतवा देने वाले श्रावक कच्चे दिमाग के होते हैं। जल्दी बहकना अच्छे श्रावक की निशानी नहीं है। मुनिमंडल क्षेत्र में आ गया। उन्हें आशा थी कि क्षेत्रवासी अगवानी करेंगे, गोचरी की दलाली करेंगे, प्रवचन सुनेंगे पर वहां तो सन्नाटा सा पसरा रहा। दो-चार छोटे-2 बालक आए तो उनसे कहकर वहां के प्रमुख श्रावकों

को बुलाया। वे श्रावक आ तो गए लेकिन भरे-2 से थे। संघ के आचार्य ने उनसे पूछ लिया—श्रावको, इस बार आप के व्यवहार में काफी अंतर दिखाई दे रहा है। आप तो हमें, हमारे मुनिसंघ को भली-भांति जानते हो पर किसी ने श्रद्धा नहीं दिखाई? भरे भराए तो बैठे ही थे एकदम बोल पड़े। आप तो सचित्त पानी पीते हो। ऐसे संतों को हम आदर मान नहीं देते। संत बड़े हैरान। हमने दीक्षा के बाद कभी भी सचित्त जल का सेवन नहीं किया और ये निराधार आरोप लगा रहे हैं। बिना उत्तेजित हुए उन्होंने पूछा—आप में से किसने हमें सचित्त पानी पीते देखा? किसी ने देखा तो था नहीं, बगले झांकने लगे। फिर एक बोला—एक घुड़सवार ने आपको नदी पर पानी पीते आज ही देखा है। उसने हमें बताया है, वह झूठ क्यों बोलेगा? संतों को श्रावकों की भ्रांति का कारण अब समझ में आया। उन्होंने बात स्पष्ट करते हुए कहा—श्रावको, आपकी शंका निर्मूल है। हम पिछले शहर से आ रहे हैं। वहां से हम कुछ पानी लेकर चले थे। कल्प पूरा होने वाला था। नदी के तट पर एकांत, स्वच्छ जगह थी। वहां हमने पानी पीया था। हमने नदी के तट पर बैठकर अचित्त पानी पीया था न कि नदी का सचित्त पानी। और उस नदी का पानी हम तो क्या आज कोई भी नहीं पी सकता, क्योंकि आज वह सूखी है। उसमें पानी ही नहीं है। आप लोगों के पास तो साधन है। खुद जाकर देख सकते हो कि नदी में पानी है या नहीं। दरअसल, आप लोग शक्की तबीयत के ज्यादा हो, श्रद्धालु कम हो। ज्ञान थोड़ा है, अहंकार ज्यादा है। औरों को ज्यादा देखते हो अपने को कम। कल्याण बुद्धि कम रखते हो, ठेकेदारी ज्यादा उठा रखी है। इसलिए जल्दी ही शंका करने लगते हो। हमसे वास्तविकता पूछ लेते। आप स्वयं जाकर देख लेते तो ये शंका नहीं होती। चलो, शंका का समाधान हो गया वर्ना न जाने अपने अलावा किस-2 की श्रद्धा और बिगाड़ते तथा कहां-2 दुष्प्रचार करते। श्रावकों ने माफी मांगी और दिमागों की सफाई की।

यही बात उस सेठ की है जो मुनियों के सान्निध्य में बैठा तीन बार हंसने का कारण पूछ रहा था। मुनि जी ने कहा—देखो, श्रावक जी, यदि

दिल को पक्का मजबूत रखकर बात सुनो तो बताऊं, वर्ना चुप रहूंगा क्योंकि बातें ही कुछ ऐसी हैं कि कच्चे दिल वाले नहीं सुन सकते।

सेठ ने कहा—गुरुदेव, अब तो मैं पक्का होकर ही आया हूं। आप जो सुनाओगे, सुनने को तैयार हूं। ओखली में सिर ही दे दिया तो मूसली की चोट से क्या डरना। जो भी बात है सुनाओ।

मुनि जी ने फरमाया—देखो सेठ जी, आप सुबह-2 अपनी हवेली के आगे खड़े राज मजदूरों को Ord r दे रहे थे कि ऐसा रंग कर दो कि सात पीढ़ी तक न उतरे। लेकिन मैं देख रहा हूं कि आपकी उम्र कुल सात दिन की बाकी है। आठवें दिन तो आपकी आत्मा इस शरीर को छोड़कर न जाने कहां जा चुकी होगी। न आप हवेली के अंदर होंगे, न बाहर। श्मशानों में चिता सुलगती मिलेगी। लेकिन हाय री तृष्णा और तृष्णा-जन्य-मूर्च्छा, आपको एक हवेली के रंगों के अलावा, न धर्म सूझता न ध्यान, न दान सूझता न परोपकार।

सात पुश्तों की चिंता तुझे खा रही कहीं फीकी चमक महल की ना पड़े।
सात ही रात में कूच करना तुझे दूत मृत्यु के दर पर हैं आ कर खड़े।
कितना नादान अनजान बेभान है सोचता क्यों नहीं है अरे जीवड़े।
आई लब पे हंसी भी यों बेसाख्ता कितने अरमान हैं सेठ तूने घड़े॥

ये दुर्दशा अकेले आपकी ही नहीं है। संसार के ज्यादातर प्राणी इस चक्कर में है। उन्हें तो महलों, मकान, धन-दौलत, रिश्ते-नाते, तेर-मेर के अलावा न आत्मा का ध्यान है न परलोक का, न गुरु भक्ति है, न दीन हीन की सेवा। बताओ ये हवेली क्या तेरे साथ जाएगी। सेठ तो सुनकर घबरा गया। पसीना आने लगा। कुल सात दिन—बस सात दिन। इतना लंबा-चौड़ा साजो समान इकट्ठा कर लिया, क्या काम आएगा?

आगाह अपनी मौत से कोई बशर नहीं,
सामान सौ बरस के पल की खबर नहीं।

आदमी जोड़ता जाता है, बटोरता जाता है, कबाड़ा इकट्ठा करता जाता है। उसे ये भी ध्यान नहीं रहता कि ये चीज आवश्यक है या नहीं। पैसे के बहाव के साथ आदमी ने अंधाधुंध खर्चे पाल लिए हैं। दो जोड़ी कपड़े से काम चल सकता है। मगर उसे तो हर रोज नए-से-नए डिजाइन के कपड़े चाहिएं।

एक जगह हमारा चातुर्मास था। एक बहन सबसे आगे आकर बैठती। मैंने कई दिन लगातार देखा कि वह रोज-2 नई साड़ी पहनकर आती है और सबसे आगे आकर बैठती है। मैंने एक दिन उससे पूछ लिया तुम रोज ही नई साड़ी पहन कर आती हो ऐसी कितनी साड़ियां तेरे पास हैं? वह हसंते हुए बोली—गुरु म. आप फिक्र ना करो। आपका चौमासा तो पूरा टपा दूंगी। हद है धर्म के ठेकेदार लोग भी इतना परिग्रह रखते हैं। देश में उनकी तरफ भी देखो जिनके पास तन ढकने को, सर्दी-गर्मी से बचने को कपड़ा नहीं है और दूसरी तरफ अनाप-शनाप खर्चे बढ़ाए जा रहे हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पीड़ा लिखी है—

श्वानों को मिलता दूध, वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की गोदी से चिपट जहां जाड़े की रात बिताते हैं।
नारी का लज्जा वसन बेच जहां ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक तब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं ॥

देश की निर्धन अभावग्रस्त जनता की सच्ची हमदर्दी गांधी जी में थी। उन्होंने उड़ीसा के एक गांव में ऐसे परिवार को देखा जिसके सदस्यों के पास तन ढकने को अपना-2 अलग कपड़ा भी नहीं था। तभी से गांधी जी ने लंगोटी पहननी शुरू कर दी। उपयोग की जाने वाली हर छोटी से छोटी वस्तु के संबंध में किफायत सारी बरतते थे। उनके पास आने वाली चिट्ठियों के लिफाफों पर वे प्रत्युत्तर लिखवा देते थे। उनकी एक दो घटनाएं सुनाता हूं—किसी ने उनको एक पैन भेंट

दिया जो महंगा था। वे उसको Use करने लगे। किसी ने उसको चुरा लिया। उन्हें बड़ी ठेस लगी। हालांकि पैन तो और भी मिल जाते मगर महंगी वस्तु के चोरी होने का खतरा ज्यादा रहता है। इसलिए उन्होंने नया पैन लिया ही नहीं। बल्कि Hold r और Nib का प्रयोग करना शुरू कर दिया। कुछ दिनों बाद वह प्रयोग भी दिक्कत देने लगा क्योंकि निब जब चाहे टेढ़ी हो जाती। एक दिन मनुबेन दूसरी निब लेने गई तो देर हो गई। इधर गांधी जी को एक-2 पल की देरी भारी लग रही थी। जब मनु आई तो देखती है कि बापू ने Hold r के दूसरे छोर को छीलकर नुकीला बना लिया था। गांधी जी कहने लगे—अब मेरी निब कभी टेढ़ी नहीं होगी। उस कलम से गांधी जी ने पहला पत्र भारत के वायसराय LordM on b tten को लिखा था।

एक मार्मिक घटना और— गांधी जी साबुन की जगह एक पत्थर का इस्तेमाल करते थे। मीरा बहन ने ये पत्थर उन्हें दिया था। गांधी जी के लिए वह पत्थर भी कीमती था। नौआखली यात्रा में नारायणपुर की बात है कि मनु बहन उस पत्थर को पिछले पड़ाव पर भूल आई। अगले पड़ाव पर जरूरत पड़ी तो बात ध्यान में आई। बापू ने मनु से कहा—'इसमें कोई शक नहीं है कि तुमने गलती की है। वापस जाओ और उस पत्थर को ढूंढ कर लाओ ताकि तुम उसे अगली बार नहीं भूलोगी। बेचारी मनु! कहने लगी—यहां बहुत सारे स्वयं सेवक हैं। क्या मैं इनमें से एक को ले जा सकती हूं? गांधी जी ने पूछ लिया—क्यों? मनु जवाब नहीं दे सकी। हालांकि मार्ग में नारियल और सुपारी के वन इतने घने थे कि अजनबी आसानी से रास्ता भूल सकता था। ऊपर से दंगों का समय भी था। पर वह अकेली ही गई। साढे नौ बजे नारायणपुर से चली राम नाम जपती हुई। जैसे-तैसे उस गांव में पहुंची। उस बुनकर के घर गई जहां कल ठहरे थे। वहां की एक वृद्धा ने साधारण पत्थर समझकर बाहर फैंक दिया था। काफी ढूंढने पर मिला तो मनु की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उसे लेकर दोपहर बाद नारायणपुर पहुंची। पत्थर को बापू की गोद में रख फूट-2 कर रो उठी। तब बापू ने कहा—तुम

जानती नहीं हो कि मुझे कितनी खुशी हुई है। जेल हो या महल पिछले 25 वर्षों से यह पत्थर मेरे साथ रहा है। अगर यह नहीं मिलता तो मुझे बहुत दुःख होता और मीरा बहन को भी। साथ ही तुमने यह भी देख लिया कि हर उपयोगी चीज ध्यान रखने लायक है। भले ही वह पत्थर क्यों न हो। फिर मनु बोली—पर बापू जानते हो, अगर मैंने कभी राम नाम जपा है तो वह दिन आज ही है। बापू हंस पड़े। बोले—हां, उनकी याद तो मुसीबत के वक्त ही आती है।

तो बात चल रही थी कि उज्जैनी का धनी मानी सेठ अपनी मृत्यु के समय को निकट जानकर हड़बड़ा गया, पसीने छूटने लगे। मुनि जी ने उसे पहले ही चौकस कर दिया था कि यदि दिल मजबूत हो तो ही मेरी बात सुनना वर्ना प्रश्नों का उत्तर जानने की जरूरत नहीं है। सेठ की आंख से पर्दा उठने लगा। जिस मुनि को वह गंवार और मूढ़ समझ रहा था, अब समझ में आने लगा कि ये गहरे में पैठ रखने वाले महामुनिराज हैं। ये आत्म प्रशंसा से दूर हैं, पर अब उनकी महानता का पता चल रहा है।

'बड़े बड़ाई ना करें बड़े न बोलें बोल,
हीरा कब मुख से कहै लाख टका मेरा मोल।'

वास्तविकता ऐसी ही है।

संपन्न लोगों के एक मोहल्ले में एक निर्धन कलाकार रहता था। जब कभी वह अपने घर से निकलता या बाहर से घर की ओर आता, वह सबको प्रणाम करता था। लोग उसके शिष्ट व्यवहार से प्रभावित होते परंतु उसकी गरीबी पर तरस खाते हुए कह देते थे कि देखो, बेचारा कितना गरीब है। एक बार शहर के धनाढ्य लोगों को राज दरबार में बुलाया गया था। सबके सब गर्व से सभा में पहुंचे। राजा के कर्मचारियों ने उनका स्वागत किया, बैठाया। तभी वह गरीब आदमी भी सभा में प्रविष्ट हुआ। धनिक लोग उसे सभा में देख चकित रह

गए। सबसे बड़ा आश्चर्य तो तब हुआ जब स्वयं राजा ने उसको सम्मानपूर्वक आसन दिया और अपने बगल में बैठाया। दरबार में उसी की चर्चा रही। जब अगले रोज वह मोहल्ले में मिला तो लोगों ने घेर लिया। पूछने लगे—'हम तो आपको साधारण सा मानव समझते थे पर आप तो राजपूजित हो, आपने बताया नहीं कि मेरे राजा साहब से निकट संबंध हैं। कलाकार ने कहा—इसमें बताने की क्या बात है? जो कला को समझते हैं वे मुझे प्रणाम करते हैं, जो नहीं समझते उन्हें मैं प्रणाम करता हूं।

यही बात उस मुनि के बारे में सेठ पर लागू हो रही थी। उसे मुनि की कीमत का पता नहीं था तो गुस्सा था। आज कुछ अहसास हुआ तो श्रद्धा पैदा होने लगी। सोचने लगा कि जीवन का आखिरी दौर है, मन की सभी शंकाएं मिटा लूं। इसलिए पूछने लगा—गुरुदेव, आपने पहली शंका का निवारण कर दिया। अब दूसरी का भी कर दो। आप घर पर आहार लेने आए और बच्चे के छींटों को देख हंसने लगे। इसमें हंसी की तो कोई बात नहीं थी। हर माता-पिता पुत्र मोह में ऐसा करते हैं। यदि मैंने बच्चे की उस क्रिया को सहज रूप में स्वीकार कर लिया तो आप क्यों हंसे?

गुरुदेव गंभीर हो गए। कहने लगे—मैं न बच्चे की हरकत पर हंसा, न आपकी चेष्टा पर, मैं तो आप दोनों के मौजूदा और पिछले संबंधों के विरोधाभास पर हंसा था। जिस बालक को तुम इतना प्यार कर रहे हो कि उसके प्रस्रवण बिंदुओं को अमृत के समान मानकर चाट रहे थे वह बालक पिछले जन्म में तुम्हारा मित्र बना। तुम्हारे घर आने लगा। धीरे-2 उसने तुम्हारी पत्नी को अपने प्रेमपाश में फंसा लिया। वह अपनी जवानी के उन्माद में उसके चक्कर में आ गई। दोनों के अंतरंग संबंध बन गए। जब तक तुम्हें भनक पड़ी, तब तक पानी सिर के ऊपर चला गया था। एक बार तूने अपने उस दुश्मन को रंगे हाथों पकड़ लिया था और तलवार से उसके टुकड़े-2 कर

दिए थे। पिछले जन्मों का वह जानी दुश्मन तुम्हारा पुत्र बनकर घर में पैदा हुआ और तुम लाड़ लड़ा रहे हो। तुम समझ रहे हो—यह मेरा कुलदीपक है, खानदान का रखवाला है। भ्रांति में मत रहना, जवान होकर यह तुम्हारी इज्जत को धूल में मिला देगा। लोग इसे ही नहीं, तुम्हें भी कोसा करेंगे कि कितना दुष्ट ये लड़का है। इसका बाप न जाने कितना दुष्ट होगा। मुझे हैरानी हो रही थी तुम्हारी नादानी पर कि तुम जिस सुंदर भविष्य के सपने ले रहे हो, वह भविष्य घोर अंधकारमय है।

धृतराष्ट्र अपने पुत्र मोह में इतना अंधा हो गया था कि उसे उचित-अनुचित, सही-गलत, अच्छा-बुरा कुछ ध्यान नहीं आता था। उसके पुत्रों ने पांडवों का हक छीन लिया। उन्हें लाक्षागृह में मरवाने का षड्यंत्र रचा। उन्हें जुए में निमंत्रित करके हराया। अपने घर की कुलवधू को सरे दरबार निर्वसन करने का दुष्प्रयास किया। वनवास के लिए विवश किया। इतना सब कुछ घोर अत्याचार, जुल्मों-सितम अपने सामने हो रहा था तो भी धृतराष्ट्र ने सबकी अनदेखी कर दी। उसका यह अंधापन पुत्र मोह से पैदा हुआ था और पुत्र मोह का कारण था—उसकी राज्य के प्रति तीव्र तृष्णा। शारीरिक अंधेपन के कारण उसे राज्य नहीं मिला, लेकिन तृष्णा नहीं मिटी। बल्कि और तीव्र हो गई। उस तृष्णा की पूर्ति अब वह पुत्रों के माध्यम से करना चाहता था। इसलिए उसे अपने पुत्रों से ही मोह था। उनके दोष, दुर्गुण, अनीति, अन्याय उसे दिखाई ही नहीं देते थे। जबकि पांडवों के प्रति द्वेष-दुर्भाव से ग्रस्त था। उनका अहित चाहता था। दुर्योधन, दुःशासन ने जो जुल्मों-सितम किए, सबको धृतराष्ट्र ने Spr t किया।

खुद राजा श्रेणिक अपने दुष्ट पुत्र कोणिक की हर गलती को बर्दाश्त करता रहा। संतान के प्रति मोह का मूल कारण मानव मन की वह तृष्णा है जो उसे मरने के बाद भी जीने के लिए प्रेरित करती है। वह सोचता है—मैं न रहूं पर मेरी संतान में मेरे सपने जीवित रहें।

सेठ, तू भी ऐसा ही सोच रहा है। सच बता, क्या ऐसा नहीं है? सेठ कहता है—गुरुदेव, आपका कथन सत्य है। निचोड़ के तौर पर फिर उन्होंने कहा—

हाय तेरी मोहब्बत की दीवानगी,
पुत्र का मूत्र भी तुझको अमृत लगा।
तेरी पत्नी का आशिक यही था कभी,
जिसको कहता है मेरा बेटा सगा।
तूने मारा इसे जार पति जानकर,
अंत में देगा कुल को ये भारी दगा।
हंस पड़ा मैं भी बरबस यही देखकर,
माया ठगनी ने जग को है कैसे ठगा।

मुनिराज की साफगोई से सेठ को चक्कर सा आने लगा। उसके सारे सपने धराशायी होते जा रहे थे। उसे समझ नहीं आ रहा था कि ये रिश्तों की भूल-भूलैया क्या है? कल जिसे मैं अपना शत्रु मान रहा था उसे ही आज अपने खानदान का वारिस मानने लगा हूं। आने वाले दिनों में जब मैं नहीं रहूंगा यह सारी कमाई को चौपट कर देगा। चलो शुक्र है, मेरी मौत का, कम से कम अपनी आंखों से विध्वंस की उन घड़ियों को नहीं देखूंगा।

उसने फिर गुरुदेव को नमन करते हुए विनति की—प्रभो, मेरा तीसरा कांटा और निकाल दो। अब मेरा चित्त टिक गया है। मन काफी समाधि में आ गया है। आप जो कहोगे, सत्य कहोगे और सत्य ही शिव सुंदर होता है। मुनिराज ने कहा—सेठ जी, तुम्हें अपने पुश्तैनी धंधे का तो पता ही है। तेरे पिता जी ब्याज खोरी का करोबार करते थे। ठीक है, इस व्यवसाय में कभी-2 कुछ जरूरत मंदों को वक्त पर पैसा मिल जाता है और उनके अटके काम चल पड़ते हैं लेकिन ऐसा धंधा करने वाले अधिकतर व्यक्ति गरीब आदमियों की गरीबी का नाजायज फायदा

उठाते हैं। तुम्हारे पिता जी की तृष्णा भी इतनी ज्यादा बढ़ी हुई थी कि गरीब लोगों का बहुत शोषण करते थे। धरोहर हड़पना, अमानत में खयानत करना, ऊंची दरों पर ब्याज लेना, लेकर मुकर जाना उनके लिए आम बात थी। उनका एक ही लक्ष्य था—येन केन प्रकारेण धन बटोरना है। अपनी पाप की सारी कमाई छोड़ गए और तुझे मिल गई। खुद वे अपने दुष्कर्मों का फल भोगने के लिए दुर्गति में चले गए। जानते हो तेरे पिता जी ही बकरा बनकर अपना फल भोग रहे थे। वह कसाई पूर्वजन्म में एक किसान था जिसके पांच रुपये तेरे पिता ने मारे थे। या तो तू पांच रुपए देकर उसका भुगतान कर देता, नहीं तो तेरे पिता को अपनी जान देकर भुगतान करना पड़ेगा।

'जे पाव कम्मेहिं धणं मणुस्सा समाययंति अमइं गहाय,
पहाय ते पास पयट्टिया नरा वेराणुबद्धा णरयं उवेंति' ॥[1]

जो मानव धन को अमृत तुल्य समझकर पाप क्रियाओं से अर्जित करते हैं वे उस धन को यहीं छोड़ जाते हैं और कर्मों के जाल में बंधे हुए नरक में जाकर दुःख पाते हैं या अन्य गतियों में अपने वैर का बदला चुकाते हैं।

पाप करते समय आदमी भूल जाता है कि इसका परिणाम बुरा होता है। जिन लोगों के लिए वह इतने पापड़ बेलता है, वे उसका दुःख में साथ नहीं देते।

'न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मि तम्मंसहरा भवन्ति।'[2]

माता पिता भाई बंधु मृत्यु के मौके उसका दुःख दर्द बंटा नहीं सकते।

वह बकरा तेरे पास फरियाद लेकर आया था कि बेटा, इस कसाई को पांच रुपए दे दे मेरी जान बच जाएगी। लेकिन तेरे लिए पांच रुपए

1 उत्तराध्ययन 4 अध्ययन 2 गाथा
2 उत्तराध्ययन 13 अध्ययन 22 गाथा

महत्त्वपूर्ण हो गए न कि एक बकरा। और वह बकरा भी कोई और नहीं तेरा पिता था।

हैफ[1] बकरे को तूने बचाया नहीं
दो रुपए ज्यादा कातिल को दे न सका।
पूर्व जन्मों में तेरा पिता था यही,
खून जिसने था चूसा सकल देश का।
वो कसाई भी था एक कृषक पूर्व में
आया भुगतान लेने था ऋण शेष का।
कौड़ी भी काम आई नहीं बाप के
धन कमाया भूला मार्ग परमेश का ॥

एक तरफ सेठ का दिमाग परेशान हो गया। दूसरी तरफ उसका समाधान हो गया। अपने तनिक लोभ के कारण पिता के जीव की मृत्यु का कारण बनने का पश्चात्ताप था। क्या मेरे साथ बनी और क्या आगे बनेगी—इस सोच से दुःखी, उद्विग्न और भग्न हो गया। लेकिन जिंदगी की वास्तविकता का पता लगने से गहरी संतुष्टि मिली। उम्र भर का बोझ उतरकर न जाने कहां चला गया। अर्न्तदृष्टि का उद्घाटन हो गया। अंधकार में प्रकाश की किरणें दिखाई देने लगीं। कहने लगा—गुरुदेव, सर्वप्रथम तो मैं आपसे इस बात के लिए क्षमापना करता हूं कि मैंने आपके बारे में बहुत गलत ख्याल अपने मन में रखे, आपसे अशिष्टता पूर्वक बोला। इस विषय में आप उदार हैं, क्षमा कर ही दोगे। लेकिन प्रश्न तो ये है कि जो मेरी कुल सात दिन की जिंदगी शेष है उसे सार्थक कैसे बनाऊं? जो भूलें मैंने जीवन भर की हैं, उनकी शुद्धि कैसे करूं? मैं इस दुनिया से भारी होकर विदा नहीं लेना चाहता।

गुरुओं ने फरमाया—भव्य आत्मा, पिछली गलतियों की ओर झांकने की जरूरत नहीं है। Let bygone s be bygone s **'बीती ताहि विसारी दे,**

---

1 आश्चर्य

आगे की सुध ले'। यदि जीवन दृष्टि बदल जाती है तो अतीत काल में बड़े से बड़ा पाप गुनाह भी प्रभावहीन हो जाता है। वर्तमान को संभाल लो और संकल्प कर लो कि जो दृष्टि मिली है उसे गुम नहीं होने दूंगा।

आत्म कल्याण के चार उपायों का यथा शक्य पालन करो—दान, शील, तप, भावना। अपनी क्षमता के अनुसार अधिकाधिक दान देने से वस्तुओं के प्रति रागभाव कम होगा, समग्र सृष्टि के जीवों के प्रति दया करुणा जागृत होगी। जो भी दो पूरे समर्पण भाव से दो, तभी क्रांति घटित होगी।

आजकल बहुत से लोगों ने दान भी मजाक बना दिया है। एक बड़ा अच्छा प्रसंग है—अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति Eisehw er ने अपने भाषण में एक दिलचस्प बात सुनाई। मैं बच्चा था तब हमारे घर वाले एक बुजुर्ग किसान के घर गाय खरीदने गए। हमने पूछा—इस गाय की नस्ल कौन सी है? भोला-भाला किसान कोई जवाब नहीं दे पाया। फिर हमने पूछा—इस गाय के दूध से प्रतिदिन कितना मक्खन निकलता है? बेचारे को ये भी नहीं पता था। अंत में हमने पूछा—कृपया ये बताओ, तुम्हारी गाय साल में औसतन कितना दूध देती है? अंत में उस वृद्ध किसान ने कहा—मैं यह सब कुछ नहीं जानता। बस इतना जानता हूं कि यह गाय बड़ी ईमानदार है। इसके पास जितना भी दूध होगा, वह सब आपको दे देगी।

उस गाय जैसी ईमानदारी-पूर्ण उदारता से ही दान धर्म का सौंदर्य निखरता है। लोगों में ऐसी उदारता कहां बाकी बची है। दान देते वक्त सौ-सौ बहाने बनाने लगते हैं। कभी कहते हैं—बच्चों से पूछकर दूंगा, कभी घर में सलाह करनी है, कभी ये करना है, कभी वो करना है। इसी बहाने बाजी की वजह से लोगों में कृपणता बढ़ रही है।

मुनिराज ने सेठ से कहा—सेठ जी, ये पैसा न तुम्हारे काम आएगा, न बेटे के क्योंकि तेरी उम्र सात दिन की है। बेटा ऐबी, कबाबी, शराबी बनेगा तो उसके पास ये पैसा बच नहीं पाएगा। इसलिए अच्छा है कि

दीन-निर्धनों की भलाई वास्ते दान पुण्य में लगा दो। दूसरे शील धर्म का पालन करके मन को गंगा जैसा पावन बना लो। तप का जहां तक तआल्लुक है अंतिम समय में पौषध कर लेना, क्षमायाचना करके आलोचना, निंदना करके हृदय की सफाई करते हुए संथारा ग्रहण कर लेना, ये आपके लिए काफी लाभदायक रहेगा और शुभ भावनाएं तो अब प्रतिपल भानी ही हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

संसार के सभी प्राणी सुखपूर्वक रहें, हर इंसान रोगमुक्त होकर जीवनयापन करे, हर जीव का भला हो तथा किसी को दुःख का सामना न करना पड़े।

इस तरह की शुभ भावनाओं से लेश्याएं शुद्ध हो जाएंगी। अंतिम समय की शुभ लेश्या अगली गति में सहायक होगी।

मुनिराज की अमृत तुल्य वाणी से सेठ की अन्तरात्मा तृप्त हो रही थी और उसके दिल में ज्ञान का उजाला होने लगा था। कितना शुभ समय था उस आत्मा के लिए जो कुछ देर पहले घोर भौतिकता की दलदल में धंसी हुई थी और देखते-2 शतदल सी खिल उठी। मेरे गुरु भाई श्री रामप्रसाद जी ने एक शानदार कविता लिखी है जिसकी एक-2 लाईन सुनने लायक है।

दीप छोटा सा जल जाए बड़ा अच्छा है,
दिल गिरफ्तों से निकल जाए बड़ा अच्छा है।
किसी ज्ञानी से सुनें ज्ञान की सुंदर बातें,
जी परेशान बहल जाए बड़ा अच्छा है।
जोश थम जाए हमें होश सही मिल जाए,
बिगड़ा माहौल बदल जाए बड़ा अच्छा है।
जानो दिल दुश्मन को देख के दहल जाते हैं,

दुश्मनी खुद की भी खल जाए बड़ा अच्छा है।
सारी दुनिया ही गिरी जाती है गुनाहों में,
गिरते-2 जो संभल जाए बड़ा अच्छा है।
बात इस्लाह की मुश्किल से उतरती है गले,
कोई हिम्मत से निगल जाए बड़ा अच्छा है।
सर्द आहों से जमा दिल का जो दरिया,
पाकर प्यार की गर्मी पिंघल जाए बड़ा अच्छा है।
हुस्नो रंगीनी ए दुनिया पे जमीं है जो नज़र,
खाके ठोकर ये फिसल जाए बड़ा अच्छा है।
मौत तो टलती नहीं कोई भी कितना टाले,
बस पुनर्जन्म ही टल जाए बड़ा अच्छा है ॥

कितनी ऊंची उड़ान ली है कविता में मेरे गुरुभ्राता ने।

मौत को टालना संभव नहीं है। चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव भी मृत्यु के शिकार होते हैं। तीर्थंकर-भगवंत भी इस देह को छोड़ते हैं लेकिन असली उपलब्धि तो तब होगी जब मृत्यु के बाद अगला जन्म न हो। न अलग जन्म होगा और न जन्म से जुड़े दुःख, द्वंद्व, राग-द्वेष होंगे।

उज्जैनी के सेठ को ऐसा मार्गदर्शन मिला कि मरने से पूर्व संभल गया। उसका एक-2 पल धर्म ध्यान में अर्पण हो गया। अब तो एकदम मन निर्मल और स्वच्छ दर्पण की मानिंद हो गया।

मृत्यु निकट हो तथा पता चल जाए तो पाप की छाया का प्रभाव नहीं पड़ता। कोई भक्त संत एकनाथ के पास आया। कहने लगा—जब मैं कभी आपको देखता हूं तो लगता है कि पाप और दुर्भावना आपके पास फटकती भी नहीं है। आपने पाप के न आने के लिए क्या इंतजाम कर रखा है। एकनाथ जी बोले—इस बात की चर्चा बाद में करूंगा। पहले मैं तुझे बता दूं कि तेरी उम्र कुल सात दिन की बाकी रह गई है। वह जिज्ञासु तो हड़बड़ा गया। घबराया-2 घर पहुंचा। कुछ जरूरी काम

निपटाए और बैठ गया प्रभु भक्ति में। न किसी से लगाव, न किसी से दुराव, न कोई तृष्णा, न कोई तमन्ना, एकमात्र अपने में लीन। सातवें दिन खुद एकनाथ जी उसके घर पहुंचे तो पूछने लगे—भक्त, बता इन सात दिनों में तेरे मन में क्या-2 पाप का भाव आया। भक्त कहने लगा—आप एक मरते हुए आदमी के साथ मजाक कर रहे हैं। उन दिनों पाप कैसे प्रवेश करता, केवल मृत्यु ही दिखाई देती रही। एकनाथ जी ने कहा—यही बात मेरे पास है। मैं पल-2 मृत्यु को मंडराते देखता हूं। इसलिए पाप से बचा रहता हूं। तू उठ, अभी तुझे मरना नहीं है। ये तो मैंने तुझे तेरे प्रश्न का उत्तर देना था। तुझे अपने अनुभव से पता चल गया कि मृत्यु सामने हो तो पाप का प्रभाव खत्म हो जाता है।

भगवान् महावीर स्वामी फरमा रहे हैं कि यदि दुःख का Permanent इलाज करना चाहते हो तो मोह पर विजय प्राप्त करो। यदि मोह को समाप्त करना चाहते हो तो तृष्णा की जड़ों को उखाड़ दो। जो तृष्णा की जड़ों को उखाड़ देगा उसका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

14. लोभ की सूक्ष्म तरंगें

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो, मोहो हओ जस्स न होई तण्हा,
तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥[1]

हे भव्यात्मा, यदि तुझे दुःख का ईलाज करना है तो मोह को छोड़ना होगा क्योंकि हमारे दुःखों की जड़ मोह में है, मूर्च्छा में है। मूर्च्छा अपने आप दूर नहीं होगी उसे दूर करने के लिए हे आत्मन्! तुझे तृष्णा कम करनी पड़ेगी। मन की प्यास को मिटाना होगा।

लेकिन समस्या ये है कि इस तृष्णा के पीछे भी कोई सूक्ष्म तत्त्व छिपा हुआ है जो इसे कम नहीं होने देता। भगवान् महावीर स्वामी ने उसी ओर इशारा करते हुए फरमाया है कि तृष्णा को वही मिटाएगा जिसने लोभ को काबू कर लिया है। असली मुद्दे की बात न दुःख है, न मोह है, न तृष्णा है बल्कि लोभ है। ये लोभ जीवात्मा के लिए सबसे बड़ी बाधा है। जब जीवात्मा ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंचकर वीतराग सुख आनंद में डूब जाता है तब उसे नीचे की ओर गिराने वाली पहली लहर लोभ की होती है। पहली ठोकर लोभ मारता है और जीवात्मा 10वें गुणस्थान में लुढ़क जाता है। फिर तो उसकी मदद में शेष तीन कषाय भी आ जाती हैं जो जीवात्मा को नीच गिराने लगती हैं। 9, 8,

---

1 उत्तराध्ययन 32 अध्ययन 8 गाथा

7 और छठे गुणस्थान पर आकर भी जीव न संभले तो नीचे आते-2 पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में भी आने की संभावना बन जाती है। इस निम्नता की ओर जाने में मुख्य योगदान लोभ का रहा है, न लोभ का उदय होता, न आत्मा में तृष्णा जागती। न तृष्णा जागती तो न मोह का जहर फैलता और न मोह का जहर फैलता तो दुःखों की काली घटाएं तन-मन पर नहीं छाती।

दशवैकालिक सूत्र में चार कषायों के द्वारा होने वाले आध्यात्मिक नुक्सान की चर्चा है। लिखा है—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो।
माया मित्ताणि णासेइ, लोहो सव्व विणासणो ॥[1]

क्रोध मानव मन के प्रेम गुण को नष्ट करता है। मान विनय गुण का खात्मा करता है। माया मित्रता के भावों को बर्बाद करती है और लोभ अकेला उन तीनों आत्म गुणों का तथा इनके अलावा आत्मा में जो और अनंत गुण है उनका भी नाश कर देता है। जब मानव हृदय के ये सद्गुण लुप्त हो जाते हैं तो सृष्टि से भी ये गुण विदा हो जाते हैं। कहीं भी कोई सद्गुण शेष नहीं रहता। पुराने सद्गुण उजड़ जाते हैं नए उग नहीं पाते। जीवन बिल्कुल वीरान हो जाता है। जिन्दगी का बाग सुनसान और श्मशान जैसा हो जाता है। ये सारा करिश्मा लोभ का है। आश्चर्य और अफसोस इस बात का है कि और कषायों का प्रतिकार हो भी जाता है पर इसका प्रतिकार होना दुष्कर हो जाता है। यह हमारे तन-बदन के रेशे-2 में समा चुका है। क्रोध मनुष्य की आंखों में बसता है। मान मानव की ग्रीवा में बसता है। माया मनुज के पेट में रहती है जबकि लोभ मानव शरीर के प्रत्येक अंग में, उपांग में, अंगोपांग में डेरा जमाए रहता है। इसका एक निश्चित ठिकाना हो तो इलाज होना आसान था, पर यह तो सर्वव्यापी है। किसी आदमी के गले में कैंसर हो तो इलाज हो जाए। पेट में हो तो उसका ईलाज हो जाए। हाथ या

1 दशवैकालिक 8 अध्ययन 38 गाथा

पैर में हो तो इलाज हो जाए मगर जो कैंसर पूरे Blood Sy tem में ही फैल गया हो तो उसका इलाज कैसे हो सकता है? यही हाल लोभ का है—यह तो अंदर बाहर हर जगह फैला हुआ कैंसर है। इसका इलाज तो बस संतोष है। लोगों को संतोष अच्छा नहीं लगता है। इन्हें अच्छा लगता है—पैसा, धन, दौलत।

कितनी विचित्र विडम्बना है इंसान की कि वह जो मौजूद है, उसका तो आनंद लेता नहीं, जो नहीं है उसकी कामना करता है। लोभ का सीधा सा अर्थ है, मिले हुए लाभ को अस्वीकार करना तथा न मिले लाभ की ओर ललचाना।

नए जमाने की एक शानदार कहानी सुनाऊंगा। एक भिखारी शराब की आदत का शिकार था। उसकी पत्नी ने एक सुंदर बालक को जन्म दिया और काल कर गई। शराबी भिखारी सोचने लगा—इस बालक का गुजारा कैसे करूंगा। अभी से इसका झंझट मिटा दूं। बच्चे को उठाया और चुपचाप शहर की किसी सड़क के किनारे उसे रख आया। किसी राहगीर ने रोते हुए नवजात शिशु का क्रन्दन सुना तो उधर की ओर गौर से देखा। बालक बड़ा सुंदर और सलौना था। उस राहगीर ने उस अनाथ बालक को अनाथाश्रम में पहुंचा दिया। अनाथालय के प्रबंधकों ने उस बालक का नाम 'कालू' दर्ज कर दिया। पिता का नाम क्या दर्ज करते? आखिरकार सोच विचार कर पिता के कॉलम में नाम लिख दिया—'भगवान्'—Kalu son of Bha gy an. वहां उसका भरण-पोषण होने लगा। उस बच्चे के कुछ संस्कार लोभ लालच के उभरने लगे। कभी-2 वह अनाथाश्रम में ही छोटी-मोटी चोरी कर लेता। अमीर बनने के ख्वाब देखने लगा। हर बालक अपनी-2 Natu e स्वाभाविक गुण अवगुणों की प्रवृत्ति लेकर आता है। किसी में क्रोध की मात्रा अधिक होती है किसी में कम। कोई तीव्र लोभ की वासना लेकर आता है, कोई उदारतापूर्ण दिल लेकर आता है। किसी में भक्तिभाव की रुचि होती है तो किसी में शासन करने का शौक।

चन्द्रगुप्त मौर्य बच्चों को एकत्रित करके उन पर राज्य करने का अभिनय करता था। उसके मूल स्वभाव को देखकर ही चाणक्य ने उसे प्रशासन करने की Train g दी थी। समय आने पर वही बालक भारत का सार्वभौम सम्राट् बना।

गुरु नानक देव ने अपनी संगत का ये नियम बना रखा था कि जब वे प्रातः दरबार में हाजिर होते तब उनकी हजूरी में सारी संगत भक्तिभाव के शब्द पढ़ती थी, भजन कीर्तन करती थी। गुरु साहिब देखते कि शब्द कीर्तन के समय एक छोटा लड़का रोज सवेरे सबसे पहले आता है और संगत में सबसे आगे बैठकर भजन कीर्तन का आनन्द लेता है। उन्होंने एक दिन उस बालक से पूछा, बच्चे, तू रोज यहां क्यों आता है? तेरे लिए तो ये सोने का समय है, तुझे वाणी के पाठ में क्या मिलता है। क्या तेरा मन खेलों की तरफ नहीं जाता? लड़के ने सिर झुकाते हुए आदरपूर्वक कहा—'एक बार मेरी मां ने मुझे चूल्हे में लकड़ियां जलाने को कहा था। उस क्रिया में एक दिन मैंने देखा कि आग सबसे पहले छोटी-2, पतली-2 लकड़ियों को जलाती है। बड़ी व मोटी लकड़ियों पर आग का असर देर से होता है। उस समय से मैं डरने लगा हूं कि मृत्यु भी शायद हम बच्चों को जल्दी पकड़ती है, बड़ों को देर से। मैं मृत्यु का उपाय आपकी संगत में रहकर पा सकता हूं इसलिए आप की संगत मुझे सबसे ज्यादा प्यारी है। गुरु साहब उस बालक की समझदारी से खुश हो गए और बोले—'भाई, तू उम्र में तो छोटा है पर अक्ल में बूढ़ा है।' उस दिन के बाद उस बच्चे का नाम 'भाई बुड्ढा सिंह' पड़ गया। जिसे कालिदास ने कहा है—**'वृद्धत्वं जरसा विना।'** शरीर पर वृद्धत्व नहीं आया पर सोच में बुजुर्गीयत उतर आई।

बाबा बुड्ढा सिंह छठी पातशाही गुरु हरगोविन्द जी के समय तक जीवित रहा। गुरु घर में उसका बड़ा आदर था। गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, रामदास, अर्जुनदेव तथा हरगोविंद को गुरु गद्दी का तिलक उसने ही लगाया था।

ये जरूरी नहीं है कि उम्र से कोई समझदार या नादान होता है, ये तो हर जीव की निजी परिणति होती है।

एक बार किसी बस्ती में भयंकर तूफान आया और उससे सब कुछ तहस-नहस हो गया। कच्चे मकान ढह गए। झोंपड़ियों के छप्पर उड़ गए। मृत्यु का ऐसा तांडव मचा कि किसी का भाई चल बसा तो किसी का पति। सब उस विनाशलीला के सामने विवश थे। मूकदर्शक बनकर देखते रहे। उस मौके सरकार ने सहायता देने वास्ते बचाव दल भेजा। उसने प्रत्येक प्रभावित परिवार को 2-2 हजार रुपए दिए। उस पैसे से एक ग्रामीण घर का जरूरी सामान ले आया। साथ ही बच्चे के लिए कपड़े भी खरीद लिए। कुछ मिठाई भी ले आया ताकि बच्चे खुश हो जाएं। बच्चों ने कपड़े पहने तो पहने ही रहे। बच्चों के तन पर एक ही जोड़ा था। धोना पहनना सब उसी का। आखिर वह जोड़ा भी फट गया। एक शाम बच्चों का बापू मजदूरी करके घर आया। सामने बिरजू खड़ा था। अपने कपड़ों की ओर देखकर बोला—'बापू, तूफान फिर कब आएगा?' ये सोच, हो सकता है, गरीबी के कारण पैदा हुई हो या हो सकता है कि किसी की कामना ही ये बनती है कि तूफान आए और तबाही मचे। शायद तबाही इसी से आती हो।

अनाथालय में पलते हुए उस बालक की इच्छा भी धनवान् बनने की रहती थी और उसकी इच्छा पूरी भी हुई। एक अमीर आदमी उस अनाथाश्रम का Ins p ction करने आया था। उसे बालक पसन्द आ गया। उसकी पत्नी भी तैयार हो गई और वे उसे गोद लेकर घर ले आए। उसका नाम उन्होंने कल्याणदास रख लिया। उसे पढ़ाया-लिखाया भी। अच्छे घर की पर गरीब सी कन्या राधा से उसका विवाह भी कर दिया। मगर उसकी मौलिक कमियों को निकाल नहीं सके। माता-पिता ने उसे बहुत हित शिक्षाएं दी, समझाया भी पर अपनी प्रवृत्ति को वह बदल नहीं पाया। बदलना चाहता भी नहीं था। इसी ग़म में उसके माता-पिता चल बसे। उसने उनके जाने का ग़म भी ऊपरी-2 मन से

मनाया। उसके अन्तर में तो यही था कि अच्छा हुआ कि रोज-2 की टोकाटाकी खत्म हो गई। अब उसका सारा जीवन सुरा सुन्दरी की भेंट चढ़ गया। लखनऊ की किसी नर्तकी 'रानी' को वह रखैल के रूप में ले आया। अपनी असली पत्नी को एक अलग मकान देकर कह दिया कि तुझे खर्चे की चिंता नहीं है। जो जरूरत हो, मिल जाएगा, पर मेरे निजी कामों में दखल देने की जरूरत नहीं है।

किसी विचारक ने लिखा है मनुष्य दिन में ऐसे कुछ गलत काम कर लेता है कि उसे रात में नींद नहीं आती और रात में फिर ऐसा कुछ कर बैठता है जिसके कारण उसे दिन में भय बना रहता है। इस कारण उसके दिन-रात दोनों बिगड़ जाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन में ऐसा कुछ न करे जिससे वह रात में सुख से सो न सके तथा सुबह किसी को मुंह दिखाने में शर्माए।

कल्याणदास को न दिन की चिंता थी न रात की फिक्र। न नींद का अहसास था, न मुंह दिखाने की परवाह। बस एक ही धुन थी कैसे धन कमाऊं और कैसे उसे उड़ाऊं। उसके लिए कमाने के साधनों पर चिंता करना व्यर्थ था तथा उसके खर्चने के तरीकों पर खेद नहीं था।

एक सेठ मेरे पास आया। मैंने पूछा—लाला जी, आमदनी खर्च का कुछ हिसाब-किताब रखते हो या नहीं? सेठ कहने लगा—गुरु महाराज, न आमदनी का पता न खर्चे का। सब अनापशनाप है। मैंने कहा—लाला जी, ये अनाप-शनाप आदमनी और खर्चा जिंदगी की नींवों को उखाड़ देगा। अभी से संभलने की जरूरत है। सुलक्खणी घड़ी थी, संतों की बात जंच गई और उसके बाद हर बात की व्यवस्था बना ली। आज वह सेठ बार-2 आकर आभार मानता है। कहता है—गुरुदेव, आपकी उस दिन की फटकार काम आ गई। आमदनी खर्चों का हिसाब तो बना ही लिया। उसके बाद उठने-बैठने, सोने-जागने, लेने-देने सबका हिसाब-किताब बन गया और Life Smooth हो गई जबकि मेरी

Comp ny में मेरे जैसे ही कई साहूकार सब कुछ लुटा बैठे हैं और दिवालिया हो गए।

सेठ कल्याणदास का सितारा अभी बुलन्दी पर था इसलिए जिधर हाथ मारता था, कुछ न कुछ कमा ही लेता था।

जब लग जिसके पुण्य का पहुंचे नहीं करार,
तब लग उसको माफ है अवगुण करे हजार ॥

एक दिन की बात है उसके Drawig Room में पांच आदमी आकर कुर्सियों पर बैठे। धीरे-2 बातें करने लगे और सेठ कल्याणदास की प्रतीक्षा करने लगे। सेठ जी भी अच्छी तरह बन-ठन के पहुंचे तो सभी आगंतुक भी खड़े हो गए। सेठ के साथ दो नौकर और एक मुनीम था। बैठने के बाद आपसी परिचय हुआ। आने वाले बंधु कहने लगे कि एक संस्था है The Sain Kab r Home for th Destitu es उसकी ओर से आपके पास आए हैं। पन्द्रह वर्ष से यह अनाथालय चल रहा है पर इन दिनों आर्थिक संकट से गुजर रहा है। बाहरी सहायता आ नहीं रही। आप सरीखे, समाजसेवी, उदार, महानुभाव के पास कुछ आशा लेकर आए हैं। कल्याणदास तो फूलने लगा। हालांकि कभी किसी को दान नहीं दिया। किसी गरीब की मदद नहीं की केवल ऐश परस्ती में सब कुछ खर्चा किया। लेकिन आज रौब जमाने का मौका आया तो बिना संकोच के कहने लगा—देखो, मैंने सदा ही दीनहीन, जरूरतमंदों की सेवा की है। आपको कितनी राशि चाहिए? आने वाले बंधु तो हैरान रह गए। खुशी से बोले—सेठ जी, आप तो राजा हैं, आपके लिए बड़ी से बड़ी राशि भी मामूली है। पर हमारा काम तो 50 हजार से चल जाएगा। सेठ जी कहने लगे—रकम है तो ज्यादा। मगर दीन अनाथों के वास्ते मैं 50 हजार देने की कोशिश करूंगा लेकिन मेरी दो शर्तें हैं। संस्था के पदाधिकारी एक स्वर में बोले—'जरूर-2, सब मंजूर होंगी।' वे कह तो गए किंतु उन्हें क्या पता था कि सेठ का दिमाग कितना

शातिर और शरारत भरा है। उसके दिमाग में कोई सेवा परोपकार का शुभ भाव नहीं था। केवल दान देकर भी कोई बड़ी योजना को सरंजाम देना था। कल्याणदास बोला—पहले तो इस संस्था का नाम 'सेठ कल्याणदास अनाथालय' रख दें। दूसरे Main Hall के अंदर मेरा चित्र लगवा दें ताकि लोगों को पता लगे कि किसकी कृपा से ये काम चल रहा है। संस्था के अधिकारियों के तो होश उड़ने लगे। फिर प्रधान ही बोला—देखिए, इस संस्था का नाम महान् संत कबीर के ऊपर रखा है। सेठ ने तो उसकी बात पूरी सुनी ही नहीं, बीच में बोल उठा—फिर आप जाइए और कबीर से ही चंदा ले आइए। सब सुनने वालों की बोलती बंद हो गई। तभी संयोगवश सेठ कल्याणदास को मुनीम ने किसी Phone के सिलसिले में बुलवा लिया। संस्था के पदाधिकारियों को सलाह मशविरा करने का Time मिल गया। उन्होंने निर्णय लिया कि उस अनाथाश्रम में पलने वाले बच्चों, बुजुर्गों एवं महिलाओं का गुजारा होना दूभर हो गया है। चंदा कहीं से मिल नहीं रहा। यदि नाम बदल भी जाए तो कम से कम अनाथों का जीवन तो बच जाएगा। अतः सेठ की शर्तें मानने में ही भला है। यद्यपि प्रस्ताव गलत है पर लाचारी का नाम महात्मा गांधी।

सेठ जी कमरे में वापस आए तो उन्होंने शर्तों पर मंजूरी दे दी। सेठ ने भी मुनीम से कहा कि उन्हें 50 हजार रुपए और मेरा फोटो दे दो। आगंतुक धन्यवाद करके चलने लगे तो सेठ ने कहा—जब अनाथालय का Sign Board बदल जाए तो मैं उसका अनावरण कर दूंगा और हां, उस दिन पत्रकारों, Photo Grapher s को भी बुला लेना। बेचारे संस्था वाले उदास मुंह लेकर चले गए। सेठ अपनी अक्लमंदी पर देर तक इतराता रहा। सोचता रहा कि कैसे मैंने 50 हजार देकर उन्हें बुद्धू बना दिया। मुझे 50 हजार के दान के बदले में ढेर सारी शोहरत मिलेगी, वो अलग कमाई होगी। उसे अपना बचपन भी याद आया मगर ये ख्याल नहीं आया कि तू गुमराहियों का शिकार है। अच्छे बुरे की भेद रेखा उसने पौंछ डाली थी। कुछ लोग ऐश्वर्य मद में इतने मशगूल हो जाते

हैं कि धर्म-अधर्म सब कुछ भुला देते हैं। किसी चिंतक ने बड़े सुंदर शब्द लिखे हैं—'हे भाई, अशुभ को करने में शीघ्रता न कर, उसको जितना टाल सके टाल दे। जैसे कि जब तुम्हें कोई गाली दे तो तुम कहना, ठीक है, तेरी गाली का जवाब कल दूंगा। गाली अशुभ है और अशुभ में जल्दबाजी क्यों? तू सदैव ध्यान रख कि अशुभ को टालने में ही तेरा शुभ है।'

लेकिन कल्याणदास तो बदी पर तुला हुआ था। उसे न संकोच था, न शर्म थी, न लिहाज थी। संत कबीर का नाम मिटाकर अपना नाम लिखाने की शर्त पर 50 हजार रुपए देने की नीचता ऐसे ही लोग कर सकते हैं।

संसार में एक से एक अच्छे लोग हैं, एक से एक बुरे। न अच्छों की कमी है और न बुरों की। भर्तृहरि ने बड़ा सुंदर चित्रण किया है—

क्वचिद् विद्वद् गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्त कलहः,
क्वचिद् रामा रम्याः क्वचिद् गलित कुष्ट वपुषः।
क्वचिद् वीणा नादः क्वचिदपि हा हेति रुदितम्,
न जाने संसारः किममृतमयः किमु विषमयः ॥

संसार के किसी भाग में ज्ञानियों और विद्वानों की भव्य चर्चाएं चल रही हैं, दूसरे किसी भाग में शराबी लोग आपस में लड़-लड़कर कोहराम मचा रहे हैं। कहीं महिलाओं का सौंदर्य जगमगा रहा है तो कहीं कोढ़ के रोगियों की कतारें खड़ी हैं। कहीं संगीत की मधुर तानें सुनाई दे रही हैं तो कहीं करुण क्रन्दन कानों में पड़ रहा है। आज तक मैं ये नहीं समझ पाया हूं कि ये संसार अमृत से भरा है या जहर से। प्रकारांतर से कवि ये कहना चाहता है कि संसार में दोनों ही चीजें हैं। संसार में एकरूपता नहीं है। पुण्य के साथ पाप, धर्म के साथ अधर्म, बंध के साथ मोक्ष है। जैन धर्म ने संसार की स्थिति Dualistic मानी है। यह संसार न एकान्ततः जीव रूप है न एकान्ततः अजीव रूप। यह

तो द्वन्द्वात्मक है। कुछ यूरोपीय चिन्तक Marx जैसे इसे Da listic Materialism भी कहते हैं।

अंधकार का अस्तित्व प्रकाश सापेक्ष है। प्रकाश का अस्तित्व न हो तो अंधकार का भी अस्तित्व नहीं हो सकता। सत्य-असत्य, मृत्यु-अमृत, शाश्वत-अशाश्वत ये दोनों मिलकर ही वास्तविकता की व्याख्या कर सकते हैं। ये स्वतंत्र रहकर व्याख्या तो क्या करेंगे। अपना स्वरूप ही कायम नहीं रख पाएंगे। अतः संसार द्वयात्मक है।

हिन्दी के अमर कवि सूर्यकांत पाठी निराला को किसी प्रकाशक से रायल्टी के एक हजार रुपये मिले। अपने घर आ रहे थे कि रास्ते में एक बूढ़ी भिखारिन खड़ी मिली। निराला ने रिक्शा रोकी और भिखारिन के पास आ गए। पूछा, आज कितनी भीख मिली? वह बोली—सुबह से कुछ नहीं मिला। निराला सोचने लगे—बेटे के रहते मां कैसे भीख मांग सकती है? उसे एक रुपया दिया और पूछने लगा अब कितने दिन भीख नहीं मांगोगी। बुढ़िया कहने लगी—तीन दिन तक। निराला ने पूछा—यदि 10 रुपए दे दूं तो? वह बोली—फिर 20-25 दिन तक जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि 100 रुपए दे दूं तो? फिर 4-5 महीने तक गुजारा हो जाएगा। निराला देता रहा, मां मांगती रही। तेज धूप में खड़ा रिक्शा वाला ये दृश्य देखता रहा। जेब खाली होती रही और बुढ़िया के भीख न मांगने की अवधि बढ़ती गई। निराला ने अपना अंतिम रुपया भी दे दिया तो भिखारिन खुशी से चीख उठी, अब कभी भीख नहीं मांगूगी। निराला ने संतोष की सांस ली, वृद्धा के चरण छूए और घर की ओर चल दिए।

संसार में इस तरह के देवपुरुष भी होते हैं जिन्हें नाम प्रशंसा की कोई भूख नहीं होती। केवल किसी दुःखी की पीड़ा को हरने की ख़्वाहिश होती है। दूसरी तरफ ऐसे भी लोग होते हैं जो जरा सा दान देकर सारी दुनिया को खरीदने की कोशिश करते हैं।

जिसने कुछ अहसाँ किया इक बोझ सर पर धर दिया।
सिर से तिनका क्या उतारा, सिर पे छप्पर धर दिया ॥

सेठ कल्याणदास ने अपनी भावी योजना अपनी रखैल रानी को बताई कि दान देने से मेरी मार्किट में Goodw ill बहुत ऊंची हो जाएगी और शहर के नामी-गिरामी लोगों में मेरी गिनती हो जाएगी। उस रखैल को तो उसकी जी हजूरी करनी ही करनी थी।

'सैयां दिन को रात कहैं तो हम तारे चमका दें'

सेठ ने अनाथालय के नामपट्ट का अनावरण खुद ही किया। पत्रकारों ने उसके कसीदे पढ़ दिए। चारों ओर चर्चा हो गई कि न जाने इस सेठ के पास कितनी अथाह धन राशि है। पूरा अनाथालय चलाने का दम अकेले इस आदमी में है आदि-2।

एक दिन सेठ जी अपने दफ्तर में बैठे थे कि मुनीम आया और कहने लगा कि आजकल शहर में तथा बाहर की Mark ts में गेहूं की Shr tag चल रही है तथा अगली फसल आने में कई महीने बाकी हैं। ये अच्छा मौका है कि मार्किट का स्टॉक खरीद लें तो Monopl y हमारी हो जाएगी। सेठ ने कहा—हमारे पास इतनी पूंजी कहां है जो इतना सारा माल खरीद सकें। फिर उधार मिलने की उम्मीद भी कम है। मुनीम बोला—आप चिंता न करें। दान देने के बाद आपकी साख काफी ऊंची हो गई है। मैं हुण्डियों पर गेहूं खरीद लूंगा। कुछ जुगाड़ बैठाऊंगा और काम बन जाएगा। सेठ जी ने खाली हुडियां मंगवाई और हस्ताक्षर कर दिए। मौका देखकर मुनीम ने अपने घर के लिए पांच हजार रुपए की मांग कर ली और सेठ ने हां भर दी। मुनीम ने अपना काम शुरू कर दिया।

सप्ताह भर में अखबारों में सुर्खियों में छपने लगा कि शहर में गेहूं की कीमतें बढ़ रही है तथा बाजार में महंगे भाव भी नहीं मिल रहा।

सेठ को तो इन खबरों से खुशी ही मिल रही थी क्योंकि उसे लग रहा था कि वह दिन दूर नहीं है जब मुझे मोटी कमाई होगी।

आदमी का लोभ औरों के नुकसान पर टिका हुआ है। 'सौ तरसे तो एक सरसे'। लेकिन आश्चर्य ये है कि कमा कमाकर भी उसको तृप्ति नहीं होती। उसे और अधिक से अधिक चाहिए। चाहे वह लाख कमा ले तो कहता है कमाई—अर्थात् कम आई। करोड़ कमा ले तो कम आई। ज्यादा आई ये कभी कहता ही नहीं। हमेशा कम आई कहता है। ये अतृप्ति ही लोभ है। इस अतृप्ति के कारण वह दौड़ता रहता है। बैठकर चैन से कुछ खाने-पीने, देने-दिलाने का आनंद ही लेना भूल जाता है।

संतोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शांत चेतसाम्
कुतस्तद् धन लुब्धाना मितश्चेतश्च धावताम्

जिन्होंने संतोष का अमृतपान कर लिया है उन्हें सुख ही सुख है, जिन्हें लोभ का सर्प काट चुका है वे इधर-उधर धक्के खाते तड़पते रहते हैं।

आशा कदे बन्दे दीयां हुंदियां न पूरियां
कलपदा बथेरा तां वी रहन्दियां अधूरियां।

'नाग्नि स्तृप्यति काष्ठानाम्' आग में कितनी ही लकड़ियां डाल दो, आग कभी तृप्त नहीं होगी बल्कि और भड़केगी। उत्तराध्ययन सूत्र में कपिल केवली ने स्पष्ट रूप में स्वीकार किया है—

'जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई
दो मास कयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं'

जैसे-2 मुझे द्रव्य का लाभ होता गया वैसे-2 मेरा लोभ बढ़ता गया क्योंकि लाभ लोभ को भड़काता है। मेरा अनुभव ये रहा कि दो मासे सोने के जिस कार्य से पूरा होने की संभावना थी वह करोड़ों-2 मन सोने की प्राप्ति पर भी नहीं हो सका क्योंकि मन तृप्त नहीं हुआ। समस्या

काम की नहीं है, समस्या है मन की। नमिराज ने इन्द्र के सामने कहा था—

'सुवण्णरुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया,
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगास समा अणंतिया' ॥[1]

किसी लोभी आदमी को यदि सोने के मेरु सरीखे तथा चांदी के कैलाश जितने असंख्य पर्वत भी मिल जाएं तो भी लोभी आदमी उन्हें कम ही मानेगा क्योंकि इच्छाएं आकाश के समान अनंत हैं।

धरती की 5 अरब की आबादी है। यदि आवश्यकता के लिहाज से देखें तो धरती के हर इंसान की आवश्यकता पूरी हो सकती है क्योंकि धरती मां किसी को भूखा, नंगा नहीं छोड़ती। लेकिन इच्छा के पहलू से देखोगे तो एक आदमी की इच्छा पूरी धरती से नहीं हो सकती। इच्छाओं का संसार तो असीमित है। कल्याणदास की इच्छाएं पंख लगाकर उड़ी जा रही थीं लेकिन कुदरत का नियम है कि इच्छाएं किसी की पूरी नहीं होती। वे एक न एक दिन टूटती ही हैं।

मगरूर न हो इतना कुछ अपनी बुलन्दी पर
हमने तो सितारों को भी गिरते हुए देखा है।

कुछ दिन बीते थे। सेठ जी जल्दी ही अपने दफ्तर पहुंच गए थे। आज का अखबार पढ़ा नहीं था। दफ्तर आकर देखा तो मुनीम की हवाइयां उड़ी हुई थी। उसने ही सेठ को उस दिन का अखबार दिखाया और बताया कि सरकार ने शहर के बाहर विशाल अन्न भण्डार को जब्त कर लिया है। ये खबर सुनाते हुए मुनीम ने कहा कि सेठ जी, हम तो बर्बाद हो गए। पुलिस किसी भी समय आपको गिरफ्तार कर सकती है। आप कुछ दिन शहर से दूर चले जाओ, नहीं तो कुछ भी हो सकता है। गिरफ्तारी तो हो ही सकती है, कई तरह के Cases का सामना करना पड़ेगा। Pb lic का गुस्सा फूट पड़ेगा। हमारे ऊपर मार्किट की

1 उत्तराध्ययन 9 अध्ययन 48 गाथा

देनदारी भी काफी है। मुझे भी अपना बचाव करने वास्ते कहीं छिपना पड़ेगा। सेठ को पसीना आने लगा। मुनीम ने कहा—'मुझे तो तेरे ऊपर भरोसा था कि हर समस्या को संभाल लेगा। अब मझधार में छोड़कर कहां जा रहा है?' मगर मुनीम ने तो कुछ सुना ही नहीं, माफी मांगी और नौ दो ग्यारह हो गया। सेठ ने सोचा, तू भी कुछ दिन Ud r Grod रहे तो अच्छा है। ड्राईवर की तलाश की तो वह नहीं मिला। गाड़ी खुद चलाकर घर लाया। अपनी रखैल रानी को आवाज दी, नहीं आई। नौकर ने बताया—आज सुबह ही अपना सामान लेकर कहीं गई है। अंदर जाकर सेठ ने तिजोरी को टटोला तो खाली पड़ी थी। दो नम्बर का सारा पैसा उसमें रखा हुआ था। वो तो लुट गया था। जब ऐसी औरत को लेकर आया था तो ये दिन तो देखने ही पड़ेंगे। बैंक में फोन किया तो पता चला कि बैंक का सारा पैसा रानी निकलवा कर ले जा चुकी थी क्योंकि उसने उसे सारे अधिकार दे रखे थे। उसे तो चैक बुक भी हाथ नहीं लगी। कल्याणदास कांप उठा, हाय, भगवान् ये क्या हुआ। अंधेरा ही अंधेरा सामने नजर आने लगा। शिंकजा कसता जा रहा था। उसे साफ-2 दिखाई देने लगा कि तेरे सिर पर कर्जदारी चढ़ चुकी है। पुलिस वाले तुझे छोड़ेंगे नहीं। जैसे-तैसे करके सड़क पर पहुंचा फिर मुंह ढक लिया ताकि कोई पहचान न ले। अपने मित्र मोतीराम के घर पहुंचा। आवाज लड़खड़ा रही थी। फिर भी अपनी हालत से वाकिफ करवाया, और पनाह मांगी। मोतीराम को पहले ही भनक पड़ चुकी थी कि अब यह दिवालिया हो चुका है तथा कई केसों में फंसने वाला है। उसने तुंरत मना कर दिया कि भाई, बाल-बच्चों वाला घर है। यहां आपको छिपाने का खतरा मोल नहीं ले सकता। आप जल्दी से जल्दी यहां से निकल जाएं। इसी में तेरा और मेरा दोनों का भला है। बेचारा क्या करता। चुपचाप बाहर गया। दिल बैठा जा रहा था।

बागवाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे,
जिनपे तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे।

आज उनका अपना कोई नहीं था। हर दरवाजा बंद था। कानून से बचने के लिए इधर-उधर छिपकर समय बिताने लगा। समाचार पत्रों से पता लगा कि उसके खिलाफ कई केस दायर हो चुके हैं। उसे ऐसी उम्मीद नहीं थी कि ऐसा भी कभी हो सकता है। उसे क्या मालूम था कि ये सब उसके अतंहीन लोभ का परिणाम था। लोभ में आकर उसने हर मर्यादा बलाए ताक रख दी थी। न ये ध्यान रखा कि ये लक्ष्मी चंचल होती है। 'चार दिन की चांदनी फिर अंधेरी रात' न गरीबों को बख्शा, न अमीरों को। न समाज की लाज रखी, न परिवार की। न मां बाप की परवाह की, न पुण्य-पाप की। आज मुंह छिपाए फिर रहा था। कुछ ही महीनों में शरीर निढाल हो गया। मुंह पिचक गया, दाढ़ी सिर के बाल बढ़ गए। झुर्रियां उभर गई। जूते फट गए। कपड़े मैले-कुचैले थे। पैदल ही चलने से पैरों में सोजिश आ गई। कल्याणदास की हालत खस्ता हो गई। एक बार गर्मी का मौसम था। कई दिन से कुछ खाने को नहीं मिला था। चलने की कोशिश कर रहा था पर दम निकला जा रहा था। सड़क के बगल में बेहोश होकर गिर गया। शरीर से पसीना छूटने लगा। शरीर का पुर्जा-पुर्जा हिल गया।

आदमी का जिस्म क्या है जिसपे सैदां है जहां,
एक मिट्टी की इमारत, एक मिट्टी का मकां,
खून का गारा है इसमें और ईंटे हड्डियां,
चंद सांसों पर खड़ा है ये ख्याली आसमां,
मौत की पुरजोर आंधी इससे जब टकराएगी,
देख लेना ये इमारत टूट कर गिर जाएगी ॥

कल्याणदास पर अभी मौत का झपट्टा तो नहीं पड़ा था पर बेहोशी का असर अवश्य आ गया था। इधर से कुछ राहगीर गुजर रहे थे। उसे देखकर उन्हें दया आ गई। एक सभ्य आदमी ने साथियों से कहा—Poor old man, I think we should remove him to the home for the destitute. They would look after him. चलो, इस

बेचारे गरीब आदमी को किसी समीपवर्ती अनाथालय में छोड़ दे। वहां इसकी देखभाल ठीक हो जाएगी।

सबने मिलकर उसे रिक्शा में डाला। संयोगवश वे उसे 'सेठ कल्याण दास अनाथालय' में ही ले आए। वे तो वहां के सैक्रेटरी को सुपुर्द कर चले गए। अनाथालय के कारिन्दों ने उसकी सेवा प्रारम्भ कर दी। उसे दूध पिलाया धीरे-2 उसे होश आया। मंत्री ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—बाबा, आप फिक्र मत करना। ये आप जैसे निराश्रित लोगों के लिए यह स्थान बनाया गया है। सेठ कल्याणदास ने इसे चलाने में मदद की। ये शब्द कान में पड़ते ही कल्याणदास की समग्र चेतना में नई करवट सी आ गई। एक करंट सा अंदर लगा। फिर उसने हॉल में टंगा अपना फोटो देखा। उसकी सांस अटक गई। सबसे बड़ा खतरा तो ये था कि कहीं मेरी तस्वीर को देख कोई मुझे पहचान न ले। पुलिस में, किसी सरकारी महकमें में या बाजार में ये खबर न कर दे कि कल्याणदास जिंदा है और यहां पड़ा हुआ है। यदि ऐसा हो गया तो मेरे लिए जीना मुश्किल हो जाएगा। उसका भीतर का स्वरूप भी बदलने लगा। उसने अपने अतीत में झांकना शुरू कर दिया। उसे अपनी जिंदगी का हर वर्का साफ-2 दिखाई देने लगा। पहले भी पुरानी यादों में डूबने का काम पड़ा था मगर तब और अब में काफी फर्क पड़ गया। तब उसे अपनी होशियारियां, चालाकियां और दिमागदारियां नजर आती थीं, अब उसे अपने दोष, दुर्गण और दुर्व्यसन नजर आने लगे। अब वह अपनी गल्तियों का X-Ray करने लगा।

आपको X-Ray की ईजाद कैसे हुई इस बात का रहस्य बताऊं। सन् 1895 के अंत में जर्मनी के Bavaria शहर में Professor Wilhelm Roentgen संशोधित Cathode नली के साथ Experimen कर रहे थे। पहले तो उन्होंने काले परदे डालकर प्रयोगशाला में अंधेरा किया। फिर Cathode नली को भी काले गत्ते से ढक दिया। वह इसलिए कि तीव्र से तीव्र प्रकाश भी बाहर न निकल सके।

जब उन्होंने कुंडली चालू की तब प्रयोगशाला में पूर्णतः अंधेरा था। परंतु जब उन्होंने चारों ओर देखा तो उसकी मेज से कुछ दूरी पर एक प्रतिदीप्तिशील परदा (Reflective Screen) तेजी से चमक रहा था। परदे पर सीधी रेखा में किरणें निकल रही थीं जो बाहर से आ ही नहीं सकती थीं। जो किरणें उस समय मशीन से निकली थी उनको X-Ray नाम दे दिया। इन किरणों का उससे पहले किसी को पता नहीं था।

पहली बार ऐसी किरणों के अस्तित्व का पता वैज्ञानिकों को लगा। धीरे-2 यही X-Ray चिकित्सा जगत में Diagnosis के काम आने लगी। आज तो इनका विकसित रूप आ गया है। लेकिन मूल बात ये है कि जब आदमी अपने अंदर झांकना शुरू कर देता है तो उसे घुप्प अंधेरे में भी अपने दोष दुर्गुण नजर आने लगते हैं। यदि वह ज्यादा गहराई में जाने को तैयार हो जाए तो उन दोषों को दूर भी कर सकता है। मनुष्य चाहे तो अपने को बदल सकता है। यदि नहीं चाहे तो कोई भगवान् भी उसको बदल नहीं सकता। भगवान् महावीर के रहते हुए भी गोशालक नहीं बदला। उसे सर्वानुभूति और सुनक्षत्र अणगारों ने बहुत समझाया कि तूने भगवान् से इतना कुछ ऋण लिया है, अब कम से कम इनकी आशातना तो मत कर। लेकिन उसे उनकी हित शिक्षा भी बुरी लगी और उन पर भी तेजोलेश्या का प्रहार कर दिया। दोनों मुनियों का वध करके भी उसकी बुद्धि में मोड़ नहीं आया। खुद भगवान् महावीर प्रभु का दामाद जमाली अपने आपको तीर्थंकर कहने लगा। किसी के समझाए से कौन मानता है? रावण को श्री राम नहीं समझा सके, विभीषण नहीं समझा सका। उल्टे उसके समझाने का परिणाम ये आया कि रावण ने उसे ठोकर मार दी। दुर्योधन ही कब माना? श्री कृष्ण म. का हर प्रयत्न बेकार हो गया। उल्टे श्री कृष्ण जी ने जब 5 गांवों के बदले संधि करने का प्रस्ताव पेश किया तो भड़क पड़ा। बोला—तू तो ग्वाला है। तुझे राजनीति का क्या पता?

कंस और जरासंध भी नहीं समझे। लेकिन कुछ आत्माएं समझ भी जाती हैं। भगवान् ऋषभदेव ने 98 पुत्रों को समझाया तो समझ गए। ब्राह्मी सुन्दरी ने बाहुबलि को समझाया तो बाहुबलि जी भी समझ गए।

कुछ आत्माएं अपने अंदर के जागरण से ही समझ जाती हैं। उन्हें किसी सुधारवादी प्रचारक की जरूरत नहीं होती अपितु जरा सा निमित्त पाकर या ठोकर खाकर मार्ग पर आ जाती हैं। गोशालक भी अंतिम सांस पूरी करते-2 समकिती बन गया। नमिराज ऋषि चूड़ियों की खनखन और चुप्पी के निमित्त को पाकर प्रबुद्ध हो गए। इसी तरह कल्याणदास आज जिंदगी की भयंकरतम चोट खाकर जाग गया। इसलिए चोट लगना भी अच्छा है यदि विवेक की प्राप्ति हो जाए तो।

दिल सोज़ेदरुं से पिंघल जाए तो अच्छा,
जलना है तो खामोश ही जल जाए तो अच्छा।
डाले गए इस वास्ते पत्थर मेरे आगे,
ठोकर से अगर होश संभल जाए तो अच्छा।
ये सांस की डोरी भी जो कट जाए तो बेहतर,
इक फांस है सीने से निकल जाए तो अच्छा ॥

पुराने संस्मरणों को मन के चित्रपटल पर उतारते हुए उसका आत्म निवेदन है–

1. **यादों के झरोखे से दिखता वो बचपन मेरा दैन्य भरा**
   आंधी में उड़ते पत्ता सा अपनी डाली से टूट चुका।
   अपनों ने जन्मते फैंक दिया गैरों की ममता ने पाला।
   दुर्भाग्य की अंधी गलियों में जन्मा संभला और बड़ा हुआ ॥

2. **इक रस्ता सा बन गया यूं ही भटकाव मिटे मेरे सारे।**
   इक सेठ ने मुझको गोद लिया और पलट गये मेरे ग्रह तारे।
   मैं फूला नहीं समाया था वो भी मुझको पा हर्षित थे।
   मैं उनके घर का उजियारा वो मुझ अनाथ के रखवारे ॥

3. कितना दुलराते थे मुझको उनको कितनी आशाएं थी।
मुझको पाकर उनके मन की मिट गई सभी चिन्ताएं थी।
लेकिन मैंने क्या सिला दिया उनकी निर्दोष मोहब्बत का।
मैंने इक-2 करके तोड़ी जो भी उनकी आज्ञाएं थी ॥

4. उनकी मर्यादा इज्जत से खेला और उनको तंग किया।
उनके कुल को बदनाम किया उनका हर सपना भंग किया।
गंदी सोहबत में पड़ करके कुकृत्य किए मैंने जी भर।
और नहीं भूल कर भी मैंने सज्जन पुरुषों का संग किया ॥

5. अब रोते-रोते कहता हूं जीवन की हर करतूत यहां।
मैं आत्म साक्षी से बोल रहा कैसे दूं और सबूत यहां।
अपनी विवाहिता पत्नी को बेहरमी से मैंने रौंदा।
जीते जी उस बेचारी ने ओढ़ा है कफन ताबूत यहां ॥

6. उस धर्मपरायण देवी ने मेरे कारण हैं कष्ट सहे।
मेरी हर भटकन भी झेली काटे हंसकर गम के लमहे।
मैं एक बाजारू औरत को ले आया घर भी सौंप दिया।
और उसने जो कुछ खेल रचा कैसे अब मेरी जीभ कहे ॥

7. फट जाए अभी ये जीभ मेरी जिसने तोड़ी थी हर सीमा।
जिसने कबीर से महासंत की नहीं रखी कोई गरिमा।
उनका भी नाम मिटा करके अपना मैंने लिखवाया था।
कितना मैं कमीना नीच बना, मैं पाप पुञ्ज कुकृत्य प्रतिमा ॥

8. शिखरों से बातें करता था अब धूल चाटता फिरता हूं।
तब अकड़-2 कर चलता था अब ठोकर खा-खा गिरता हूं।
अब तो मर जाऊं अच्छा है, क्या-2 भूलूं क्या याद करूं।
ज्यों-2 मैं आगे बढ़ता हूं त्यों-2 दुःखों से घिरता हूं ॥

कुछ दिन बेचैनी, बीमारी, हताशा में बीते। फिर हल्की-2 तबीयत संभली। अनाथाश्रम के प्रबंधकों ने सोचा—बाबा जी, अब संभल जाएंगे।

अब थोड़ी बहुत, कागजी कार्रवाई कर लेनी चाहिए। सैक्रेटरी एक रजिस्टर लेकर उसकी चारपाई के पास आया और कहने लगा—बाबा, यदि तकलीफ महसूस न होती हो तो अपना, अपने परिवार का परिचय रजिस्टर में दर्ज करवा दो। आपका और आपके पिता जी का क्या नाम लिखूं? कल्याणदास को कुछ देर तक जवाब नहीं सूझा। फिर कहीं दिमाग के एक कोने ने झकझोरा और बोल पड़ा—मेरा नाम है कालू और मेरे बाप का नाम है—भगवान्। मेरा इतना ही परिचय है और मैं ये समझ रहा हूं कि मैं अपने घर आ गया हूं। कुछ ही दिनों में भगवान् के घर ही चला जाऊंगा। संस्था के मंत्री ने सोचा—अभी यह बूढ़ा सदमे से ऊपर नहीं उठा है। समय तो लगेगा ही। यहां की तीमारदारी से ठीक होने की पूरी संभावना है। ज्यादा बातें करना इसकी निराशा भावना को बढ़ा सकता है। इस विचार से अधिक बातचीत नहीं की और अपने अन्य कार्यों में व्यस्त हो गया।

लेकिन कालू उर्फ कल्याणदास की तबीयत अब और बिगड़ती गई। कभी-2 अपने आपे से बाहर हो जाता। फूट-2 कर रोने लगा। एक रात उसने दो काम किए। एक तो अनाथालय पर लिखे 'कल्याणदास' को किसी रंग से पोत दिया, दूसरे हॉल में टंगे फोटो के फ्रेम को तोड़ दिया तथा नीचे उतारकर एक तरफ फैंक दिया और जोर-2 से बोला—

9. लो पौंछ दिया कल्याणदास का नाम स्वयं मैंने कर से,
लो फोड़ दिया शीशे में जड़ा ये फोटो मैंने पत्थर से।
अब सो जाऊं मैं आंख मूंद और सर्वकाल निश्चिन्त रहूं,
निश्चेष्ट हुआ वो जीवन था जिस पर सारी दुनिया तरसे ॥

अगली सुबह अनाथालय वालों ने देखा कि बाबा गुजर गया है और हाल का फोटो टूटा-फूटा एक तरफ पड़ा है तथा अनाथाश्रम का Sig Board कालिख से पोता हुआ है।

उनके लिए यह सारी घटना एक रहस्य भरी हो गई। उन्हें क्या पता था कि एक ख्वाहिशों का मृत ढेर पड़ा है जिसने किसी व्यवस्था

को मंजूर नहीं किया। किसी धर्म या सिद्धांत का अनुसरण नहीं किया। केवल इच्छाएं और नई इच्छाएं जिसके मन के ऊपर छाई रही। उनकी पूर्ति के लिए जिसने हर हथकंडा अपनाया। हर कुकृत्य करके देखा। आज सबका अवसान हो गया था।

तरस जाती हैं बुलबुलें कभी चमन के लिए।
तरस जाते हैं शहंशाह कभी कफन के लिए ॥

मानव जाति के सामने बड़ी विषम समस्या है कि यदि वह लोभ को बढ़ाता है तो मानसिक संताप उसे घेरने लगते हैं और यदि वह लोभ का त्याग कर देता है तो संसार में जीने लायक नहीं रहता। वह न कोई कारोबार करता है, न परिश्रम करता है। आलस्य का पुंज बन जाता है। इस समस्या का समाधान क्या है? भगवान् महावीर ने फरमाया कि सांसारिक जीवों को तीव्र लोभ पर ब्रेक लगानी चाहिए। गृहस्थ को ऐसा धंधा करना चाहिए जो अंधाधुंध न हो। जो गोरखधंधा न बन जाए, अंधा न बना दे। कुछ लोग लोभ के इतने शिकार हो जाते हैं कि उनके लिए राष्ट्र और राष्ट्र की सुरक्षा का प्रश्न गौण हो जाता है। देश और देशभक्ति उपेक्षित हो जाती है। उन्हें परिवार और पारिवारिक रिश्तों की गरिमा-महिमा का अहसास नहीं रहता। कुछ व्यक्ति तो इतने नादान हो जाते हैं कि अपने शरीर और शरीर के स्वास्थ्य को भी पैसे की बलिवेदी पर कुर्बान कर देते हैं।

जिंदगी और बंदगी सब पैसे के लिए।
Life गुजर गई Earning में सब पैसे के लिए ॥

ऐसे धन लोभियों को मानसिक शांति की तो फिक्र तो हो ही कैसे सकती है? 'वे चमड़ी दे सकते हैं दमड़ी नहीं।' लगभग एक हजार वर्ष पुरानी बात है कि स्पेन के राज्य परिवार से जुड़े एक आदमी—अहमद सा. भारत आए। उन्हें भारत की अनेक विशेषताओं ने प्रभावित किया। बाद में स्पेन जाकर भारत में सीखी हुई विद्याओं का अच्छा प्रसार

किया। उनके विषय में एक खोजी, विद्वान्, इतिहास लेखक ने लिखा है कि जब वे व्यापार के लिए दोबारा भारत आए थे उस समय उनकी नाक में घाव हो चुका था। धीरे-2 उसका आकार बढ़ता गया था। स्पेन में उन्होंने दवाइयां भी काफी खाई थीं, लेकिन आराम नहीं आया। उसे अपने कारोबार के लिए भारत आना ही था तब वहां के वैद्यों ने सलाह दी कि तुम भारत जा रहे हो वहां तुम्हारे रोग का ईलाज हो सकता है। उसे कुछ आश्वासन मिला। वर्ना रोग के कारण वह काफी खिन्न, उदास और निराश हो चुका था। बीमारी आदमी को आर्तध्यान में धकेल देती है। कोई विरले पुरुष ही होते हैं जो रोग में अपने समभाव को कायम रख पाते हैं। मेरे गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति श्री मदन लाल जी म. सन् 1962 में कैंसर जैसी महाव्याधि से ग्रस्त हो गए थे। गले में भयंकर पीड़ा थी। लगता था अंदर कोई ज्वालामुखी सुलग रहा हो। वो खुद फरमाया करते मुझे ऐसा महसूस हो रहा है मानो गले के भीतरी भाग को कोई चाकुओं से छील रहा है। पानी की एक बूंद भी उतरते समय गले को काटती थी। लेकिन फिर भी उनकी समता बड़ी कमाल की थी। कभी उफ तक नहीं की। आवाज कम ही निकलती थी फिर भी जब बताते तो कहते थे कि कभी अज्ञान दशा में कर्म बांधे हैं, उनका हंस-2 कर भुगतान दे रहा हूं।

बांध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां न छुड़ाय।
आप ही कर्ता भोगता, आप ही बंध कराय।

लिहाजा, स्पेन का वह व्यापारी जब भारत आया तब उसने भारत के एक प्रसिद्ध वैद्य को ढूंढा और अपनी समस्या बताई। घाव देखकर वैद्य ने कहा—मैं आपका इलाज तो कर दूंगा पर मेरी एक शर्त है कि यदि आप पूर्ण रूप से अच्छे हो जाएं तो अपनी संपूर्ण संपत्ति में से आधी संपत्ति मुझे दे दें। उस व्यापारी ने ये शर्त मंजूर कर ली। वैद्य ने इलाज कर दिया और उसका घाव ठीक हो गया। पूर्णरूप से अच्छे हो जाने पर अहमद सा. ने वैद्य जी को अपनी सारी सम्पत्ति का सारा

ब्यौरा दे दिया और निवेदन किया कि आप इसमें से आधी संपत्ति अपने नाम कर लें। वैद्य ने उत्तर दिया कि मैं तो यह देखना चाहता था कि आपको धन प्यारा है या स्वास्थ्य। आपने धन के लालच में इलाज न करवाया होता तो आपकी मृत्यु हो जाती। अब तो सारा भय निर्मूल हो गया है। आप पूर्णरूप से स्वस्थ हैं, बस, मैं तो इतना ही चाहता था। मुझे पैसे या संपत्ति का लोभ नहीं है। ऐसे भी वैद्य हैं जिन्हें धन से प्यार है, उन्हें मरीज से कुछ लेना-देना नहीं है। ऐसे वैद्यों के लिए किसी भुक्तभोगी ने लिखा है–

वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर,
यमस्तु हरति प्राणान् त्वं प्राणान् धनानि च ॥

हे वैद्यराज, तुम्हें मेरा नमस्कार है क्योंकि तुम यमराज के सगे भाई हो। बस दोनों में थोड़ा सा फ़र्क है कि यमराज तो आदमी की जान ही लेता है और तुम जान के साथ माल भी छीन लेते हो।

आज साफ़ है कि ये पुराना श्लोक कितना सही साबित हो रहा है। डॉक्टरों के लिए मुख्य लक्ष्य कमाई है। मरीज जाए भाड़ में। बिना जरूरत बड़ी-2 Testig करवाते हैं क्योंकि उनकी कमीशन बंधी है। जब तक फीस जमा न हो जाए तब तक इलाज तो दूर मरीज को देखते तक नहीं। पैसा ही हावी हो गया। Meid cal हो, Ed ation हो, धर्मस्थान हो जितने भी पवित्र कार्य थे लगभग सबका Commercialisation हो चुका है। व्यवसायीकरण की इस प्रक्रिया से जिंदगी का हर पहलू प्रभावित हो चुका है। किसी ने डॉक्टरी पेशे पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–

'डॉक्टर साहब बहुत मीठा बोलते हैं।
स्टैथोस्कोप से मरीज का दिल नहीं जेब टटोलते हैं।'

तो बात चल रही थी सामान्य जीवन जीने के लिए आदमी कितना लोभ करे, कितना लोभ छोड़े। तो इस समस्या का समाधान ये है कि

आदमी इतना लोभ न करे कि औरों के हक हड़पने पर उतारू हो जाए। **'मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा'**—ये लोभ राक्षसी लोभ है। आदमी को इससे बचने का अवश्य भाव रखना चाहिए। **तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा'**—मैं अपने हकों की रक्षा करूं और दूसरों को उनके हक हासिल करने दूं तो मानवीय भावना टकरावों को रोकती है। आपसी समन्वय बनाए रखती है। ये भावना भी सृष्टि में कायम हो जाए तो फिजूल के झगड़े, मुकदमे युद्ध, और मारकाट बंद हो जाए। लोभ की मात्रा घट जाए तथा संतोष की भावना का उदय हो जाए तो **'तेरा सो तेरा, मेरा सो तेरा'** का स्तर आ जाता है। यह दैवी भावना कहलाती है। इस भावना वाले का मानसिक संतोष इतना ज्यादा हो जाता है कि वह किसी के हक पर ललचाता नहीं है। बल्कि अपने हक की वस्तु को भी न्यौछावर करने को राजी हो जाता है। वह इंसान नहीं फरिश्ता होता है। ऐसे प्राणी धरती पर विरले ही होते हैं पर जितने भी होते हैं वे धरती का सौंदर्य और शृंगार होते हैं। चौथी किस्म की भावना इससे भी ऊंची होती है—**'न तेरा न मेरा, दुनिया रैन बसेरा'** ये है ब्राह्मी या भागवती भावना। इस Lev l पर जीने वाले तो लाखों-करोड़ों में दो-चार ही मिलेंगे। मगर जो इस Lev l पर आ जाते हैं उनकी गरिमा, महिमा का अंकन नहीं किया जा सकता। उनकी पहचान तो वही कर पाते हैं जो खुद उस स्तर पर पहुंच चुके होते हैं। एक बार की बात है कि गौतम बुद्ध का पाटलिपुत्र नगर में चौमास था। उनका उपदेश सुनने अपार भीड़ आती थी। महात्मा बुद्ध संसार के दुःखों से मुक्त होने तथा सुखी जीवन जीने का संदेश दिया करते थे। एक दिन उनके प्रमुख शिष्य आनंद ने प्रवचन के बीच में प्रश्न पूछ लिया—'भंते, इस विशाल धर्मसभा में सबसे सुखी व्यक्ति कौन है?' बुद्ध ने सभा में सबसे पीछे बैठे फटेहाल व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा कि वह सबसे सुखी व्यक्ति है।' आनंद चकित हो गया। उसकी शारीरिक स्थिति तथा कपड़ों की हालत को देखते हुए ये सोचा नहीं जा सकता था कि वह सबसे अधिक सुखी व्यक्ति होगा। इसलिए अविश्वास की सी मुद्रा में उसने

पूछ लिया—'भंते, वह फटेहाल व्यक्ति? वह सबसे सुखी है?' महात्मा बुद्ध ने मुस्कुराते हुए फिर कहा—हां, आनंद, वही सुखी है और उसका रहस्य तुम्हें अभी पता चल जाएगा।

बुद्ध ने सभा में बैठे सभी लोगों को एक-2 करके अपने पास बुलाया और पूछा—'बोलो, तुम्हें क्या चाहिए?' आने वाला हर भक्त पुलकित हो गया। अहो धन्य हैं हम जो भगवान् बुद्ध हमें वरदान देंगे।' सबने अपने-2 अभाव बताने प्रारंभ कर दिए। प्रभो, आप की कृपा हो जाए तो घर में धन की कमी है वो पूरी कर दें। दूसरे ने संतान की मांग की। किसी ने पद की तो किसी ने रोग निवारण की। एक-2 करके सब अपनी अन्तर्व्यथा बताकर चले गए। अंत में वह व्यक्ति आया। बुद्ध ने पूछा—तुझे क्या चाहिए। प्रसन्नचित्त उसने कहा—प्रभो! मैं परम सुखी हूं, सदा आनंद में रहता हूं। महात्मा बुद्ध ने कहा—'फिर भी कुछ मांग लो। मेरा मन है तुझे कुछ बक्श दूं। उसने निवेदन किया—यदि आप देना ही चाहते हैं तो ये देने की कृपा कर दें कि मेरे मन में कोई चाह ही उत्पन्न न हो। बुद्ध मुस्कुराए और आनंद की ओर देखा। आनंद समझ गया था। बुद्ध ने शाश्वत सत्य का उद्घाटन करते हुए कहा—**'सुख की सही राह है, चाह का अभाव। जहां चाह है वहां आह है।'**

भगवान् महावीर ने यही फरमाया है कि दुःख दूर करने के लिए मोह को दूर करो। मोह दूर करने के लिए तृष्णा दूर करो, तृष्णा दूर करने के लिए लोभ को दूर करो। जो भी भव्य प्राणी लोभ को दूर करेगा उसका यहां भी कल्याण होगा, वहां भी कल्याण होगा।

15. अकिंचनता का सिंहासन

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

''दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो, मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो, लोहो हओ जस्स न किञ्चणाइं ॥[1]

दुःख नष्ट करना हो तो मोह को दूर करना होगा। मोह को दूर करने के लिए तृष्णा को मिटाना होगा। तृष्णा को मिटाना है तो लोभ से किनारा करना होगा तथा लोभ से किनारा करना है तो मन में अकिंचन अवस्था लानी होगी।

जिंदगी को व्यवस्थित, स्वस्थ, निश्चिन्त एवं अर्थपूर्ण बनाने के लिए बड़ी शानदार seq n es भगवान् ने दी हैं। जिंदगी के संबंध में युग-2 में लाखों-करोड़ों लोगों ने अलग-2 ढंग से सोचा है। जिसको जिंदगी का जो पहलू अधिक उपयोग करने में आ गया उसने उसी को औरों के सामने पेश कर दिया। एक संग्रहकार ने अलग-2 विचारकों के 16 Poin s Collect किए हैं जिनमें जिन्दगी क्या है और उसके प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण होना चाहिए। ये बड़े सरल और साफ शब्दों में दिखाया है।

1. Life is a challenge, Meet it — जीवन चुनौती है, स्वीकारो।
2. Life is a struggle, Aceept it — जीवन संघर्ष है, अपनाओ।

---

1 उत्तराध्ययन 32 अध्ययन 8 गाथा

3. Life is an adventure, Dare it	जीवन साहस है, करके देखो।
4. Life is a sorrow, Overcome it	जीवन पीड़ा है, पार हो जाओ।
5. Life is a tragedy, Face it	जीवन मरण स्थिति है, सामना करो।
6. Life is a duty, Perform it	जीवन कर्त्तव्य है, निभाओ।
7. Life is a game, Play it	जीवन क्रीड़ा है, खेल कर देखो।
8. Life is a mystery, Unfold it	जीवन रहस्य है, उद्‌घाटित करो।
9. Life is a song, Sing it	जीवन गीत है, गाते रहो।
10. Life is a bliss, Take it	जीवन आनंद है, मनाओ।
11. Life is an opportunity, Utilise it	जीवन अवसर है, लाभ उठाओ।
12. Life is a dream, Realise it	जीवन स्वप्न है, साकार करो।
13. Life is a journey, Complete it	जीवनयात्रा है, संपन्न करो।
14. Life is a promise, Fulfill it	जीवन प्रण है, पूरा करो।
15. Life is a love, Enjoy it	जीवन प्रेम है, आनंद लो।
16. Life is a beauty, Praise it	जीवन सौन्दर्य है, स्तुति करो।

भगवान् महावीर के अनुसार जीवन परम सुखानुभूति है, लेकिन उस सुखानुभूति की डगर पर चलना भी तो जरूरी है। सुख हमारी आत्मा का मूल स्वभाव होते हुए भी क्यों हमसे कन्नी सी काट कर चल रहा है? क्यों नहीं, हम हर जगह, हर समय सुख के सागर में निमग्न रहते? इसका उत्तर देते हुए प्रभु महावीर ने फरमाया है कि हम अपने से भिन्न पदार्थों को अपने अंदर ले आते हैं उन्हें अपना मान लेते हैं। वे आते हैं तो दुःख लेकर आते हैं, जाते हैं तो दुःख देकर जाते हैं इसलिए परकीय पदार्थ मानव के दुःखों का मूल कारण हैं। जब-2 मानव ने ये अहसास कर लिया कि मैं किसी का नहीं, कोई मेरा नहीं वह अकिंचन बन जाता है और तभी दुःख तथा दुःख के कारण विलुप्त हो जाते हैं। 'कुछ मेरा है' ये भाव केवल वस्तुओं से ही नहीं जुड़ा हुआ बल्कि विचारों, विकारों, कषायों, आदतों, संस्कारों, कर्मों और भावों से भी जुड़ा हुआ है। यह 'कुछ' स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य, भौतिक-अभौतिक हर बाहरी तत्त्व को अपने अंदर समेट लेता है। दशवैकालिक सूत्र के दूसरे

अध्ययन में साधक की एक मनोदशा का चित्रण किया है जिसमें वह स्वयं को किसी नारी के आकर्षण में खिंचा पाता है। उसे भगवान् ने एक फार्मूला दिया है। वह सोचे—

'न सा महं नो वि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं'

'न वह मेरी है, न मैं उसका हूं।' इस भावना से नारी का आकर्षण टूट सकता है। वास्तव में इस अकिंचन भावना से तो सब प्रकार के आकर्षणों से पिंड छूट जाता है। आचार्य अमित गति ने परमात्म द्वात्रिंशिका में लिखा है—

'यस्यास्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्धं तस्यास्ति किं पुत्र कलत्र मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये?'

जब ये शरीर ही अपना नहीं है तो फिर शरीर से संबंध रखने वाले पुत्र, मित्र, पत्नी आदि अपने कैसे हो सकते हैं? जैसे शरीर की चमड़ी अलग हो जाए तो केश और रोएं शरीर पर नहीं रह सकते।

अकिंचन मुनि का विशेषण है। यह विशेषण उसके अपरिग्रह व्रत और निर्ग्रन्थ भाव की ओर इशारा कर रहा है। पूर्ण अपरिग्रह भाव और निर्ग्रन्थता मुनि का स्वरूप भी है, ध्येय भी है और उसका साधना क्रम भी है। उत्तराध्ययन सूत्र के 9वें अध्ययन में वर्णन है कि इन्द्र म. ब्राह्मण वेश में आकर नमिराज से कहते हैं कि मिथिला नगरी में भीषण आग जल रही है। आपने इस बारे में क्या सोचा है? नमिराज ने फरमाया—मेरा मिथिला में तो क्या पूरे संसार में कुछ नहीं है, मेरा क्या जलेगा? मैंने पुत्र कलत्र छोड़ दिए, मैंने हर हलचल छोड़ दी, मैंने प्रिय और अप्रिय का विभाजन छोड़ दिया है। जो मुनिधर्म में स्थित है, जो अणगार जीवन जी रहा है, जो सब बंधनों से मुक्त हो चुका है, जो एक अपने स्वरूप का दर्शन कर रहा है उसके लिए हर स्थान, हर समय, हर घटना भद्र कल्याण सुख आनंद दायक है। ऐसे व्यक्ति उस मुकाम पर पहुंच जाते हैं जहां दुःख का अंत हो जाता है। जिन्होंने दुःखी होना

छोड़ दिया है उन्होंने बाहरी परिग्रहों को, भीतरी रागों को तिलांजलि दे दी होती है फलस्वरूप वे सुख की गंगा में गोते लगाते रहते हैं।

कुछ मानव इतने ऊंचे हो जाते हैं कि घर में रहकर भी मन में अकिंचन बन जाते हैं। उनके चित्त से 'मेरे पन' का भाव विदा हो जाता है।

प्राचीन कथा साहित्य का एक प्रसंग है कि साकेतपुर नगर के बाहर सुरप्रिय नामक देवता का मंदिर था। चूंकि साकेत नगर कला के लिए विख्यात था इसलिए दूर-2 के कलाकार वहां कला सीखने आते थे। ये उस नगरी का रिवाज था कि प्रत्येक कलाकार अपनी कला की पूर्णता पर एक सुंदरतम चित्र उस देव की सेवा में अर्पित करता था। वर्ष भर में एक मेला लगता था, उत्सव मनाया जाता था और चित्र अर्पण के साथ उस देवता की पूजा होती थी। लेकिन कुछ वर्षों से चित्र अर्पण को लेकर भीषण समस्या खड़ी हो गई थी। किसी चित्रकार ने ऐसा चित्र उसकी सेवा में भेंट कर दिया जो कई दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण था। कलात्मक होने की बजाय भौण्डे आकार का था। सुरप्रिय अपनी आशातना से क्षुब्ध हो गया और उस चित्रकार को मृत्यु के मुख में पहुंचा दिया और आगे से घोषणा कर दी कि जो भी चित्रकार दोषयुक्त चित्र बनाएगा उसे मार दिया जाएगा। कलाकारों की दुनिया में दहशत छा गई। शत-प्रतिशत निर्दोष चित्र तो कोई बना ही नहीं सकता। कोई न कोई त्रुटि रह ही जाती है।

कलाकारों ने चित्र अर्पण की परम्परा बंद कर दी। इस बात से भी सुरप्रिय क्षुब्ध हो गया। उसने घोषणा करवा दी—'यदि वार्षिक मेले में चित्र नहीं चढ़ाया गया तो सारी नगरी में महामारी फैला दूंगा।' यों तो सारी जनता मर जाएगी। बड़ी भारी समस्या खड़ी हो गई। न चढ़ाओ तो नगरी मरे, चढ़ाओ तो चित्रकार मरे। ये किसके पास गारंटी थी कि चित्र में कोई कमी, गलती ही न रहे। वस्तुतः बिल्कुल गलती से तो वही

बच सकता है जो कुछ नहीं करता। गलती तो मानव का स्वभाव है। जो कोई काम करेगा, उससे गलती तो होगी ही होगी।

हमारे पास समाज के कई पुराने आदमी आकर शिकायत करते हैं—गुरु म. आजकल हमारे प्रधान जी ने ये गलत काम किया, वो गलत काम किया। मैं उनसे पूछता हूं कि जब आप लोग चौधर में थे, तब आपने क्या किया था। तब तो सारा काम बंद पड़ा था। नया प्रधान आया है, कुछ कर तो रहा है। कुछ करेगा तो भूल भी होगी और भूल का सुधार भी होगा। आप लोगों का रवैया तो निठल्ला बैठने का था। अपने कार्यकाल में कुछ किया नहीं। आज कोई करने आया है उसे करने देना नहीं।

साकेतवासी बड़े भयंकर संकट में फंस गए। कोई कलाकार तैयार नहीं था अपनी जान जोखम में डालकर उस देवता का चित्र बनाकर अर्पण करने के लिए। अब पूरी नगरी पर आफत थी। प्रशासन ने सार्वजनिक मुसीबत टालने के लिए एक सामूहिक निर्णय लिया कि प्रतिवर्ष शहर के एक परिवार से एक कलाकार ये काम करेगा। फिर वह कलाकर मरे या जिए ये उसकी किस्मत। परिवार का नाम पर्ची Sy tem से निकाला जाएगा। सभी कलाकार परिवारों के नामों की पर्ची एक मटके में डाली जाएगी और एक पर्ची जो पहले निकलेगी उस परिवार को अपना बलिदान देना होगा। कुछ सालों तक ये सिस्टम चलता रहा। हर बार चित्र चढ़ाने वाले परिवार का एक सदस्य काल-कवलित हो जाता। यों दहशत का आलम बढ़ता जा रहा था। एक बार की बात है कि कौशाम्बी का एक युवा चित्रकार कला सीखने साकेत पुर में आया। उसके पास धन संपत्ति तो अधिक थी नहीं कि किसी बड़े घर में रहने का प्रबंध कर लेता। एक वृद्धा के घर पर रहने लगा। शिक्षा वह एक कलाविद् से लेता था, रहता वृद्धा के घर पर था। उस वृद्धा के पुत्र से उसकी मित्रता हो गई क्योंकि वह भी उसी गुरु से विद्या सीख रहा था। संयोगवश जिस वर्ष उस युवक की शिक्षा पूर्ण

हो रही थी उसी वर्ष देव महोत्सव में चित्र चढ़ाने की पर्ची उसके मित्र की निकल आई। घर में क्रंदन मच गया। घर के इकलौते बालक की संभावित मृत्यु से मां का कलेजा फटा जा रहा था। बेटा मां को ढ़ाढ़स दे रहा था लेकिन मां को कैसे धीरज बंधे। कौशाम्बी के उस युवा चित्रकार को सारे घटनाक्रम का पता चला। उसने सोचा, क्यों ना इस घर की समस्या का समाधान कर दूं। यदि देवता मेरे प्राण ले ले तो मेरे इस मित्र की जिन्दगी बच जाएगी।

क्या गजब की सोच थी, जीवन के प्रति, परिवार के प्रति कोई लगाव ही नहीं। उसने किसी वस्तु को अपना माना ही नहीं था। क्या है संसार, क्या है परिवार, क्या है शरीर, क्या है जिंदगी? सब कुछ क्षणभंगुर ही तो है, एक न एक दिन छूट जाएगा। फिर इसे अपना क्या मानना? ये सब चीजें कुछ परमाणुओं का, अदृश्य तत्त्वों का मेल ही तो है। इनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता है इन पर मेरा क्या अधिकार है, क्या कब्जा है, इन्हें मैं अपना क्यों मानूं? सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ स्वयं में स्वतंत्र है। न कोई किसी का स्वामी है, न कोई किसी के अधीन? यहां का अणु-2 अपने आप में है, ये मानव की भ्रांति है कि फलां चीज मेरी है। पहले परमाणुओं के संयोग से स्थूल स्कन्ध बनते हैं, फिर उन स्थूल स्कन्धों से शरीर आदि ढांचे बनते हैं फिर आत्माएं उनमें कुछ समय के लिए रहने को आ जाती हैं। इस अस्थायी संयोग को हम स्थायी मानकर सोच लेते हैं कि ये मेरा शरीर है। कई शरीर जुड़ जाते हैं तो मान लेते हैं कि ये मेरा परिवार है, कई परिवार जुड़ जाएं तो मान लेता है ये मेरा कुल-वंश है। कई कुल-वंश मिल जाएं तो कहने लगता है ये मेरी जाति है। कई जातियां मिल जाएं तो मेरा देश कह लेता है मतलब ये कि अपनी वास्तविक अकिंचनता को भिन्न-2 बहानों से ढ़कता रहता है।

उसे तो जीवन और मरण में, संयोग और वियोग में कुछ अंतर ही नज़र नहीं आ रहा था।

अरे मन मेरा मेरा क्या,
जो छुट जाए मिलकर के भी फिर वो तेरा क्या?
धन वैभव झूठा सपना है, इसको तू समझा अपना है,
इससे बढ़कर जग में होगा और अंधेरा क्या?
यात्रा पथ पर चलते-चलते, ठहरे कहीं दिन ढलते-ढलते,
इतने से ही अपना बना वो रैन बसेरा क्या?
नहीं बनता अपना ये तन है, कैसे अपना जन परिजन है,
सगा भाई भी दुश्मन बनता भाई चचेरा क्या?
काल आंधी ने देश उजाड़े, बड़े-2 हैं दुर्ग उखाड़े,
टिक पाएगा फिर तेरा ये तम्बू डेरा क्या?

उसने एक निर्णय लिया कि ये परिवार भयंकर संत्रास में से गुजर रहा है इसलिए मैं ही देवता के लिए चित्र अर्पण करने का दायित्व ले लेता हूं। उसने गृहस्वामिनी से निवेदन किया—माता जी, आप विलाप न करें। इस साल के महोत्सव में मैं देव का चित्र बनाकर चढ़ाऊंगा। जो होना होगा, मेरे साथ होगा। आपके पुत्र, मेरे मित्र का बाल भी बांका नहीं होगा। आप निश्चिन्त होकर खाना बनाएं, मुझे और भैया दोनों को खिलाएं। उस चित्रकार का प्रस्ताव सुनकर वृद्धा नारी तो सकते में आ गई। ये तो कोई सोच भी नहीं सकता कि कोई आदमी अपने आपको मृत्यु के लिए सौंप दें।

वह बोली बेटा, ये तो हो ही नहीं सकता। तू हमारे घर पर इतने समय से रह रहा है। हमारा मेहमान भी है, घर का सदस्य भी है। मेरे बेटे का मित्र भी है। क्या मैं इतनी स्वार्थिनी बन सकती हूं कि अपने पुत्र मोह में किसी पराई मां के लाल की बलि चढ़ा दूं। नहीं, ऐसा नहीं होगा।

बहुत देर तक परदेशी चित्रकार और गृह स्वामिनी के बीच विवाद होता रहा। दोनों अपने-2 Stad पर कायम थे। अंत में कौशाम्बी के युवक ने कहा—माता जी, मेरी आपके पुत्र से गहरी मित्रता है। ये और

मैं दोनों एक दिल दो शरीर हैं, यदि ये देवप्रकोप से मर गया तो मैं इसके विरह में खुद मर जाऊंगा। मुझे तो मरना ही है, ये मरेगा तो भी मरूंगा, यदि मैं चला जाऊंगा तो भी मरूंगा। दो व्यक्ति मरें, दो घर बर्बाद हों, उसकी बजाय एक को बचा लेने में फायदा है। **'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः'** आप मुझे कितना भी रोको पर मैं आपकी ये बात नहीं मानूंगा। आप तो मुझे आशीर्वाद दें और इस विषय में मौन हो जाएं। मेरा निश्चय अटल है। मैं ही जाऊंगा, अपने मित्र को नहीं जाने दूंगा। वृद्धा को अंततः हां भरनी पड़ी। तत्पश्चात् इस चित्रकार ने बेला तप किया, शरीर पर चंदन का लेप लगाया, मुंह पर आठ पट वाला वस्त्र (मुंहपट्टी) बांधा। बड़े शांत मन से यक्ष का चित्र बनाया। चित्र वाकई बहुत सुंदर बना। जब शांत चित्त से कोई रचना की जाती है, उसमें गुणवत्ता आती ही आती है। शांत चित्तता के लिए आवश्यक है—ममता और विषमता का परिहार। ये योग्यता उस युवक में जन्मजात थी। उस चित्र को परम आदर भाव से यक्ष के आयतन में लाया। अर्पण करने से पहले उसने देव की स्तुति में कुछ मनोभाव प्रस्तुत किए—'हे सुरप्रिय देव श्रेष्ठ! अत्यंत निपुण चित्रकार भी आपके भव्य रूप का आलेखन करने में समर्थ नहीं हैं, फिर मैं तो बालक हूं। मेरी शक्ति ही कितनी है? फिर भी मैंने भक्तिपूर्वक आपका चित्र अंकित किया है। इसमें कितनी ही त्रुटियां होंगी। किंतु आप तो महान् हैं, क्षमा के सागर हैं, मेरी त्रुटियों के लिए क्षमा करके इस चित्र को स्वीकार करें।' चित्रकार तो पहले भी आते थे, वे अपनी भेंट भी अर्पित करते थे। लेकिन ये चित्रकार तो कुछ निराला ही था। उसका मानस, उसका प्रस्तुतीकरण, उसकी विनम्रता, उसकी सरलता सब कुछ असामान्य थी। वह इतनी सहज और अकृत्रिम थी कि यक्ष भाव विभोर हो गया। चित्र तो निर्दोष था ही, पर चित्रकार की निर्दोषता का कोई सानी ही नहीं था। बात चित्र की नहीं उसके रचयिता की थी। यक्ष को वह युवक भा गया और कहने लगा—'वत्स, मैं तुझ पर प्रसनन हूं। बोल, तू क्या चाहता है?' उसी सहज सद्भावना से युवक ने कहा—'देव, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो चित्रकार जाति

को अभयदान दे दीजिए। बस, यही याचना है आपसे।' देव ने मुस्कुराते हुए कहा—'वत्स, मैंने तुझे अभयदान दिया है तो इसका सीधा सा अर्थ है कि शेष सबको भी अभयदान दे दिया। मैं अब किसी की जिंदगी के साथ खिलवाड़ नहीं करूंगा। तेरे निर्मल मानस, बलिदानी स्वभाव और निश्छल भक्ति के कारण मैंने यह निश्चय कर लिया है।'

युवा चित्रकार भाव मुग्ध हो गया। उसके होंठों से बरबस शब्द फूट पड़े—'कृतार्थ हुआ प्रभो, आपने चित्रकारों तथा नगर जनों को सदा के लिए निर्भय कर दिया। इससे बढ़कर और महालाभ क्या हो सकता है।' मैंने आपके इस आश्वासन से सर्वोच्च वरदान पा लिया है। मैं महालाभ का पात्र बना।' वह युवक जितना भाव विभोर हो रहा था, उससे कहीं अधिक देव होता जा रहा था। उसने प्रथम बार किसी विलक्षण मानव के दर्शन किए थे। अपनी प्रसन्नता को मुखर करते हुए देव ने पुनः कहा—'अब तक तूने दूसरों के लिए मांगा है, अब अपने लिए भी मांग ले।' युवक कहने लगा—'देव श्रेष्ठ! अपना और परकीय तो मुझे ज्ञात नहीं है, न कुछ निजी है, न कुछ पराया है। मेरे मानस ने किसी को अपना नहीं कहा इसलिए वह पराए की भाषा और भावों से मुक्त है। लेकिन फिर भी ये मन चित्रकला का अनुरागी है। इसको तृप्ति तभी मिलती है जब चित्र सर्वांगीण हो, यथार्थपरक हो तथा त्रुटिविहीन हो। यदि देव मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप इस मन की संतुष्टि-तृप्ति के लिए इतनी कृपा करें कि मैं किसी स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, निर्जीव-सजीव किसी भी वस्तु का एक अंश मात्र भी देख लूं तो उसका समग्र चित्र यथार्थ रूप में अंकित कर सकूं।'

चित्रकार की इच्छा पूरी हुई क्योंकि देवता ने कहा—'तथास्तु।'

इस सारी कहानी का सारांश ये ही है कि कलाकार जब उस अवस्था में पहुंच सकता है कि सब कुछ लुटा सके तो साधकों के लिए तो कुछ भी असंभव नहीं है।

यहां ये भी ध्यान रखना कि जो पूर्णतः 'न कुछ' बन जाते हैं उन्हीं पर सृष्टि अपना सर्वस्व सब कुछ न्यौछावर कर देती है।

मिटा दे खुद को इतना कि रहे न कुछ निशां बाकी,
कि दाना खाक में मिलकर गुलो गुलजार होता है ॥

अकिंचनता का स्तर आना बहुत मुश्किल है। बाहरी साधनाएं होती रहती हैं, वस्तुएं छोड़ दी जाती हैं पर उनके प्रति आकर्षण बना ही रहता है। मानव अपनी कमजोरी की वजह से दीर्घ तपस्याओं के बावजूद अपने को संतुष्ट नहीं कर पाता। ईसाई धर्म में एक प्रसिद्ध महापुरुष हुए है—संत ऑगस्टीन। उन्होंने जीवन में दीर्घकाल तक ईश्वर की भक्ति की। तपस्या-साधना का कठोरतम सफर तय किया पर उन्हें कुछ प्राप्त नहीं हुआ। उनकी मान्यता के अनुसार उन्हें प्रभु दर्शन नहीं हुए। इस अप्राप्ति के कारण उदास-खिन्न और दुःखी रहने लगे। कारण स्पष्ट है कि अभी भी 'कुछ' चाहते थे। जब तक प्राप्ति की कामना है तब तक अकिंचनता प्रकट नहीं होती। भारत के ऋषि मुनियों को ये तो विश्वास रहता है कि इस जन्म में नहीं तो अगले किसी जन्म में प्रभु-दर्शन हो जाएंगे। मगर ईसाई मत में तो पुनर्जन्म की भी मान्यता नहीं है। इस कारण उस संत की व्यग्रता ज्यादा थी। उन्होंने रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के अनुसार लंबी साधना, कठोर संयम का पालन किया। स्वभाव इतना अच्छा था कि उनका कोई विरोधी भी उनमें दोष नहीं निकाल सकता था। उस युग के, उस इलाके के बड़े-2 तपस्वी उनके व्रत, तितिक्षा एवं सादगी की तारीफ करते थे। इन सारी उपलब्धियों के बावजूद उसके मन को शांति के घूंट की प्यास थी। वह सोचा करते—'मैं दूसरों को ईसा का संदेश सुनाता हूं। सभी तन्मय होकर मेरा प्रवचन सुनते हैं। कुछ व्यक्ति मेरे प्रवचन से प्रभावित होकर साधना में भी लग जाते हैं। लेकिन मैं स्वयं उस अनुभूति से वंचित हूं। एक व्यथा और परिताप हर पल उसे घेरे रहता था।

गृहस्थी हो या साधु, गरीब हो या अमीर, शिक्षित हो या अशिक्षित जो भी आत्म तृप्ति से वंचित है वह दुःखी ही रहेगा।

एक बड़ी प्यारी कविता है। है तो बिल्कुल सीधी सादी मगर इसकी हर कड़ी की आखिरी Lin में बड़े पते की बात कही है। सात मुक्तकों की कविता इस प्रकार है–

1. **कोई हाल मस्त कोई माल मस्त कोई तोता मैना सूहे में,**
   कोई खान मस्त पहरान मस्त कोई राग रागनी दूहे में।
   कोई अमल मस्त कोई रमल मस्त कोई शतरंज चौपड़ जूए में,
   इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब पड़े अविद्या कुए में ॥

2. **कोई अक्ल मस्त कोई शक्ल मस्त कोई चंचलताई हांसी में,**
   कोई वेद मस्त कोई कुरान मस्त कोई मक्के में कोई काशी में।
   कोई ग्राम मस्त कोई धाम मस्त कोई सेवक में कोई दासी में,
   इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बंधे अविद्या फांसी में ॥

3. **कोई पाठ मस्त कोई ठाठ मस्त कोई भैरों में कोई काली में,**
   कोई ग्रंथ मस्त कोई पंथ मस्त कोई श्वेत पीत रंग लाली में।
   कोई काम मस्त कोई खाम मस्त कोई पूर्ण मस्त कोई खाली में,
   इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बंधे अविद्या जाली में ॥

4. **कोई बाट मस्त कोई खाट मस्त कोई वन पर्वत उजाड़ा में,**
   कोई जात मस्त कोई पात मस्त कोई तात भ्रात सुत दारा में।
   कोई कर्म मस्त कोई धर्म मस्त कोई मंदिर ठाकुर द्वारा में,
   इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब बहे अविद्या धारा में ॥

5. **कोई शाक मस्त कोई खाक मस्त कोई खासे में कोई मलमल में,**
   कोई योग मस्त कोई भोग मस्त कोई थिरता में कोई चंचल में।
   कोई ऋद्धि मस्त कोई सिद्धि मस्त कोई लेनदेन की कलकल में,
   इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब फंसे अविद्या दलदल में ॥

6. कोई ऊर्ध्व मस्त कोई अधो मस्त कोई बाहर में कोई अंदर में,
कोई देश मस्त परदेश मस्त कोई औषध में कोई मंतर में।
कोई आप मस्त कोई बाप मस्त कोई नाटक चेटक तंतर में,
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब फंसे अविद्या जंतर में ॥

7. कोई सुस्त मस्त कोई चुस्त मस्त कोई दीरघ में कोई छोटे में,
कोई गुफा मस्त कोई शुफा मस्त कोई तुम्बे में कोई लोटे में।
कोई ज्ञान मस्त कोई ध्यान मस्त कोई असली में कोई खोटे में,
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब रहे अविद्या टोटे में ॥

बड़ी Simp e बातें हैं, देशी Sty e है पर एक ही बात पते की बताई जा रही है कि यदि अपनी आत्मा तृप्त, संतुष्ट और प्रसन्न नहीं है तो सारी साधनाएं, सारे कर्मकांड, सारी त्याग, तपस्याएं निरर्थक हैं। और संत ऑगस्टीन का भी यही हाल था। अपने अन्दर की रिक्तता से तो वे कम वाकिफ थे। एक बार वे समुद्र के किनारे पर गए। वहां एक बालक को देखा और उसकी क्रिया उन्हें बड़ी विचित्र लगी। उस बालक ने बालू में एक गड्ढा बना रखा था और एक सीप में समुद्र का पानी भरकर गड्ढे में उंड़ेल रहा था। Aug tin मंत्र मुग्ध हो उस बालक को देर तक देखते रहे। फिर उसके पास गए पूछने लगे—बच्चा, क्या कर रहे हो? बालक तो हिचकिचाया भी नहीं। उत्तर देने लगा—'आप देख नहीं रहे हैं मैं इस गड्ढे में समुद्र को भरने का प्रयास कर रहा हूं। संत ऑगस्टीन हंसने लगे, कहा—'गड्ढे में समुद्र कैसे समाएगा।' बालक बोला—'समाएगा क्यों नहीं?' मैं कुछ दिनों में ही निरंतर उलीच उलीचकर समुद्र को इस गड्ढे में भर डालूंगा। लगता है आपने बाइबिल नहीं पढ़ी। मेरी मां मुझे बाइबिल पढ़ाती हैं। उसमें लिखा है—'ये सही है कि हमारा हृदय गड्ढे की तरह संकीर्ण है किंतु निरंतर की एकाग्र साधना से वह एक दिन इतना विस्तीर्ण हो जाता है कि विराट प्रभु भी उसमें समा जाता है।' ऑगस्टीन ने बालक को गुरु मानकर सिर झुकाया और अपनी व्यथा का समाधान पा गए। और समाधान तो यही

है कि अपनी प्राप्ति की इच्छा का भी त्याग कर दो। फिर उस रिक्त स्थान में प्रभु का अवतार हो जाएगा। हृदय का विस्तार अनंत आसमान जितना होने पर प्रभु अपना सिंहासन वहां जमा लेंगे। जिनके दिल में गरीब-अमीर दोनों के प्रति समान भाव होता है। किसी को छोटा-बड़ा, नजदीक-दूर मानने की भावना जागृत नहीं होती। जो अपने को किसी प्राणी से पृथक् सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता, जो Sp riority या If eriority की धारणाओं से मुक्त रहता है—उस श्रेष्ठ मानव को हम अकिंचन कह सकते हैं। वह किसी को अपमानित नहीं करता, लज्जित नहीं करता, छोटा साबित नहीं करता। ऐसा इंसान घर में या वन में सर्वत्र प्रसन्नता से जीएगा।

एक राजा के पुत्र की शादी का अवसर था। उसने सोचा, शादी की दावत में राजा महाराजा आएंगे, मंत्री, सेनापति आएंगे। सेठ, साहुकार, अधिकारी, व्यापारी आएंगे, रिश्तेदार, तरफदार भी आएंगे। क्या ही अच्छा हो कि साधारण नागरिक भी शादी की दावत में शामिल हों तथा पुत्र-पुत्रवधू को आशीर्वाद दें। वह समझता था कि सामान्य व्यक्ति की दुआ ज्यादा पवित्र होती है। राजा के कर्मचारी नगरी के हर घर को निमंत्रण देने गए। नगरी के गरीब-अमीर, रंक-रईस सबने आने का न्यौता माना और दावत में आए। लेकिन एक पंडित जी, जो प्याऊ चलाता था, उसने निमंत्रण स्वीकार करने से मना कर दिया। राजा के दूतों ने पूछा—आपको आने में क्या ऐतराज है? वह कहने लगा—दावत तो भाईचारे की होती है और भाईचारा टिकता है लेने-देने से। अकेले लेने से या अकेले देने से रिश्ते-नाते नहीं निभते। उनके लिए लेन-देन दोनों ही चाहिए। मैंने राजा को क्या दिया है और क्या दे पाऊंगा? मेरे पास एक प्याऊ है। इसका पानी तक मैं राजा साहब को पिला नहीं पाया तो मुझे उनकी दावत खाने का हक नहीं है। नियुक्त आदमी ने आकर राजा साहब को बता दिया कि समस्त नगरी ने आपका निमंत्रण मान लिया है लेकिन प्याऊ वाले पंडित ने इस बिना पर आने से इंकार कर दिया है। यदि आप कहें तो सिपाही उसे पकड़कर ले आएंगे।

महाराज के लिए उस आदमी को बुलाना अपनी प्रतिष्ठा का सवाल नहीं था। उसने अपनी प्रतिष्ठा कभी अलग से मानी ही नहीं थी। वह तो जन-2 को प्रतिष्ठा देना चाहता था। उसकी निगाह में हर व्यक्ति सम्माननीय था। इसलिए शक्ति प्रयोग का तो मतलब ही नहीं था। कर्मचारी को कह दिया कि आप निश्चिन्त रहो। थोड़ी देर बाद राजा ने साधारण नागरिक का वेश पहना और बिना किसी को साथ लिए प्याऊ पर पहुंच गया। पंडित जी से कहा—पंडित जी, अपने हाथों से शीतल मीठा पानी पिलाओ। पंडित ने बड़े प्रेम से पानी पिलाया। पानी पीकर राजा ने निवेदन किया—'पंडित जी, अब तो आपकी शिकायत दूर हो गई ना?'

पंडित जी को भेद समझ नहीं आया तो पूछने लगा—राहगीर, मुझे तो आपसे कोई शिकायत नहीं रही, फिर आप ये बात क्यों कह रहे हैं।' राजा ने कहा—भाई, आपको शिकायत है कि राजा ने मेरी प्याऊ का पानी भी नहीं पिया। पंडित जी को अब पता चला कि ये स्वयं राजा जी चलकर आए हैं और उलाहना उतारने आए हैं। उसे भी अपनी गलती का अहसास हुआ इसलिए कहने लगा—राजन्, इस तुच्छ इंसान की गलती को क्षमा करें। राजा साहब बोले—नहीं, नहीं, मैं आपके स्वाभिमान की दाद देता हूं और पीठ थपथपाने लगा। पंडित जी बोले—आप महान् हो। राजा वही है जो रंक और अमीर सबका समान ख्याल रखे। उस राजा जैसी महानता तभी प्रकट होती है जब मन के किसी कोने में भी कषाय का विष शेष नहीं रहेगा। ये अहं, ये अपेक्षाएं, ये कल्पनाएं और मुरादें धन दौलत से ज्यादा खतरनाक हैं। धन-दौलत, मकान, कपड़े, रोटी आदि का प्रबंध करना परिग्रह नहीं है। ये तो जीवन की उपयोगिताओं आवश्यकताओं की पूर्ति है। जबकि कषाय तो जीवन की विषमताएं हैं। यदि आप किसी की आवश्यकता के अनुसार कुछ मदद कर रहे हो और अपने मन में न अभिमान पाल रहे हो, न जरूरतमंद को अहसान जता रहे हो तो धरती पर फूलों की खेती उगा रहे हो। ऐसे मानव रत्नों से ये सृष्टि शृंगारित और सुशोभित

होती है। ऐसे उच्च कोटि के मानव अपने तथा सामने वाले के जीवन में गुणों की सौरभ भर डालते हैं। उनके अवदानों का मूल्यांकन करना संभव नहीं होता।

एक किशोर सड़क के किनारे खड़ा भीख मांग रहा था। एक सज्जन उधर से गुजरे। उस किशोर ने कहा—कृपया, एक पैसा दे दो। आने वाले सज्जन ने बड़े स्नेह से पूछ लिया—मैं एक की जगह चार पैसे दे दूंगा, पर ये बताओ तुम पैसे लेकर क्या करोगे? किशोर ने कहा—दो पैसे से आज का भोजन खाऊंगा, दो कल के लिए सुरक्षित रखूंगा। आगंतुक महोदय मानो उस किशोर की बात से प्रभावित हो गए। उसे टटोलते हुए पूछने लगे—बेटा, यदि मैं चार पैसे की बजाय चार आने दूं तो फिर क्या करोगे? युवक को लगा—यह आदमी मजाक कर रहा है। पर फिर भी उसने कहा—मैं कुछ दिन और भीख नहीं मांगूंगा। आने वाले ने पुनः पूछ लिया—यदि मैं तुम्हें आठ आने दे दूं तो तुम क्या करोगे? वह कुछ झल्लाने को हुआ पर संभल गया। किसी अच्छे शिष्ट आदमी के सामने खड़ा था—ऐसा उसे लगा। कहने लगा—आप ये प्रश्न किसलिए पूछ रहे हैं? उस भद्र पुरुष ने कहा—बेटा, मैं मजाक नहीं कर रहा। मैं ये जानना चाहता हूं कि क्या तुम सदा ही भीख मांगते रहोगे? किशोर ने कहा—नहीं, यदि मुझे इकट्ठे आठ आने मिल जाएं तो मैं चार आने से कुछ दिन का भोजन ले आऊंगा और चार आने से कुछ सामान खरीदूंगा उसे बेचकर गुजारा करूंगा। उस दानवीर बंधु को बस अपनी समस्या का समाधान मिल गया। उसने उसे तुरन्त 2 रुपये जेब से निकालकर दे दिए। भिखारी लेकर उछल पड़ा। धन्यवाद करता हुआ चला गया। कई वर्ष बीत गए। एक दिन वही दानी महोदय बाजार से गुजर रहे थे। एक युवक दौड़ा-2 आया और अपनी दुकान पर ले गया। कहने लगा—आप तो मुझे नहीं पहचानोगे लेकिन मैं आपको पहचानता हूं। आपको तो सारा संसार पहचानता है। पहले मैं नहीं जानता था कि जिस महानुभाव से मैं दो रुपए ले रहा हूं वह लोक सेवक ईश्वर चन्द्र

विद्यासागर हैं। आपके दो रुपयों ने मेरा नक्शा ही बदल दिया। अब मैं आत्म निर्भर हो गया हूं।

अच्छे आदमी की संगति थोड़ी देर में ही भाग्य को पलट देती है। किसी संस्कृत के कवि ने सही लिखा है–

पंडितैः सह सांगत्यं पंडितैः सह संकथाः।
पंडितैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥

ज्ञानवान् पुरुषों के साथ संगति, वार्तालाप और मित्रता करने वाला कभी पछताता नहीं है।

इसी तरह दूसरे श्लोक में भी कहा है–

सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥

सज्जनों के साथ चाहे बैठो, रहो, झगड़ो या प्रेम करो कोई खतरा नहीं है। पर दुर्जनों के साथ कोई वास्ता मत रखना।

इस विषय में तो संस्कृत भाषा में बड़ी सूक्तियां हैं। दो और–

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति,
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

सज्जन पुरुषों की संगति से बुद्धि की जड़ता भागती है, वाणी में सत्य का सिंचन होने लगता है, सन्मान शिखर की ओर जाता है, पाप पलायन कर जाता है, चित्त में खुशी की लहर उमड़ने लगती है और यश कीर्ति दिगन्तों में छा जाती है। कुल मिलाकर कहने का अभिप्राय ये है कि सत्संगति से हर अच्छाई हासिल हो जाती है। आखिरी श्लोक सुनिए–

हीयते हि मति स्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समता मेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

यदि घटिया लोगों की संगति होगी तो बुद्धि का स्तर नीचे चला जाएगा। यदि समान योग्यता वालों के साथ संगति रहेगी तो बुद्धि मध्यम दर्जे की हो जाएगी। यदि विशेषज्ञ पुरुषों के साथ संगति की जाएगी तो बुद्धि स्वतः ही विशेष बन जाएगी।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के हृदय में यदि धन, वस्तु या पदार्थ के प्रति लगाव होता तो एक पैसे के स्थान पर दो रुपए नहीं देते। वो दो रुपए न देते तो वह भिखारी युवक अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता। ईश्वर चन्द्र के लिए धन की अहमियत ही नहीं थी। वह तो मानव हृदयों की उत्फुल्लता, प्रसन्नता को अपने जीवन की पूंजी मानता था। चांदी, सोना, करैन्सी, नोट्स ये तो प्रतीक हैं मानव की अधिकार भावना के। आवश्यक नहीं है कि ये सभी को लुभाते हों, फंसाते हों। ठीक है हमारे सामने ज्यादातर केस ऐसे आते हैं जो इनके चक्कर में उलझे हुए होते हैं लेकिन संसार में उन लोगों की भी कमी नहीं है जो इन चीजों को कुछ नहीं समझते। उन्हें सच्ची अकिंचनता प्राप्त हो जाती है।

बात पुरानी नहीं है—समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई है कि कटक के शेख बाजार का आठवीं कक्षा का एक छात्र शहर से स्टेशन तक रिक्शा में आया। रिक्शावाले ने किराए के बारह आने मांगे। छात्र ने एक रुपए का नोट दिया तो रिक्शा वाले ने लेने से मना कर दिया क्योंकि उसके पास वापस लौटाने के लिए चार आने नहीं थे। छात्र ने कहा—आप यहां ठहरो, मैं रेजगारी लाता हूं और वह स्टेशन के भीतर चला गया। वहां एक Book Stall पर उसे कोई आकर्षक पत्रिका दिखाई दे गई। पहले तो उसका Cov r पसंद आ गया, फिर उसके पन्ने पलटने लगा। उसे मैगजीन का Sb ect इतना रोचक लगा कि पढ़ने में ही लीन हो गया। ये ध्यान नहीं रहा कि तू यहां एक रुपए की रेजगारी भुनवाने आया है और तुझे रिक्शा वाले के पैसे भी देने हैं। अचानक आधा

घंटे बाद उसे होश आया। रेजगारी ली और भागा-2 स्टेशन से बाहर आया। लेकिन तब तक रिक्शा वाला जा चुका था। छात्र की अंतरात्मा बुरी तरह विक्षुब्ध हो गई। वह सोचने लगा—मैंने उस रिक्शा वाले की मजदूरी मारकर भारी पाप किया है। उस गरीब की रोटी छीनी है, उफ! वह भूखा होगा। दुःखी छात्र इधर-उधर ढूंढने लगा। काफी रात तक ढूंढते-2 हुए भी वह नहीं मिला तो समीपवर्ती बस स्टैंड के पास बैठकर सिसकियां भरकर रोने लगा। लोगों ने कारण पूछा तो उसने बताया—मैंने एक गरीब की मजदूरी मार ली। मैं उसका प्रायश्चित कर रहा हूं। लोगों ने उसे समझाया तो उसे कुछ ढाढस मिला। फिर भी अश्रुपूर्ण नयनों से किसी भिखारी को पैसे देकर ही घर गया। यदि सहृदयता और तटस्थता से विचार करें तो ये बात समझ में आएगी ही आएगी कि उस छात्र में इतनी ईमानदारी की भावना का मूल कारण उसकी अकिंचन वृत्ति थी।

ये जमीं कुछ नहीं ये आसमां कुछ नहीं
चार तिनकों का ये आशियां कुछ नहीं ॥

संसार के पदार्थों की कीमत ही क्या है जब अन्तरात्मा में धर्म का अभ्युदय हो गया हो, परम शांति का तोहफा मिल गया हो। वे लोग तो गरीब हैं जो छोटी-2 चीजों को इतना अधिमान दे रहे हैं और आत्मसाम्राज्य के मौलिक अधिकारों को खो चुके होते हैं। अकिंचनता से बढ़कर कोई बादशाहत नहीं है। लेकिन शर्त ये है कि अकिंचन व्यक्ति को किसी प्रकार की अपेक्षा न हो। निरपेक्षता सर्वोच्च सुख है। यदि सब कुछ छोड़कर भी किसी प्रकार की अपेक्षा बनी रही या नई पाल ली तो समझ लेना कि वही दारिद्र्य फिर कई गुणा होकर वापस लौट आया है। अपेक्षा मुक्त जीव ही अकिंचन होता है और अकिंचन जीवन ही सुखपूर्ण होता है।

किसी जगह एक फकीर लेटा हुआ था। हर अदा में मस्ती थी। उधर से देश का बादशाह और उसका वजीर घूमते हुए निकले। जिज्ञासावश दोनों कुछ देर खड़े हो गए। उनके खड़े होने से फकीर के ऊपर पड़ रही धूप रुक गई। इसलिए उसने पूछ लिया—कौन हैं आप जो धूप को रोक रहे हैं? बादशाह को लगा कि किसी ने उसकी बादशाहत छीन ली है। पूछने वाले को मेरी हैसियत का भी पता नहीं है। फिर भी शिष्टता का तकाजा था तो अपना परिचय देना मुनासिब समझा। कहने लगा—मैं इस मुल्क का बादशाह हूं। मगर तू अपने बारे में भी बता कि तू कौन है? फकीर ने हंसकर कहा—'मैं शहंशाह फकीर हूं।' दो विरोधी वाक्य है—शहंशाह भी, फकीर भी। बादशाह हैरानी से पूछने लगा—फकीर, तू शहंशाह कैसे हो सकता है। जिसके साए तले बादशाह हो वही तो शहंशाह होता है। तेरे नीचे कौन सा बादशाह है? फकीर लेटे-2 बोल रहा था और वाणी में गंभीरता और शांति थी। कहने लगा—'तू मेरे नीचे वाला बादशाह है न?' बादशाह तो इस अपमान से तिलमिला उठा। कुछ सख्त कार्रवाई करे उससे पहले उसने वजीर की ओर निहार लिया। दानिशमंद वजीर ने आंखों से रोक दिया और प्रश्न को आगे बढ़ाने का इशारा कर दिया। बादशाह झुंझलाया हुआ भी था, उत्सुक भी था, अतः पूछ लिया। 'तेरा तख्त किस इलाके में है?' फकीर किसी दिव्य लोक से अपना परिचय देने जा रहा था। बोला—'ये सारी धरती ही मेरा तख्त है।' कहते-2 उसके चेहरे पर मुस्कुराहट नाचने लगी। बादशाह को लगा—ये मूर्ख फकीर तुझे अपमानित करने का प्रयास कर रहा है। इसलिए झल्लाते हुए पूछा—मूर्ख, तेरे पास दौलत कहां है? फकीर का जवाब टका सा था। 'मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है, फिर दौलत मेरे क्या काम आएगी?' बादशाह का पारा चढ़ता जा रहा था और हाथ तलवार की मूठ की तरफ बढ़ता जा रहा था और उसी रौ में पूछ उठा—'तेरी फौज कहां है?' बच्चे की तरह खिलखिलाते हुए फकीर ने कहा—'मेरा कोई दुश्मन नहीं है।' बादशाह का सिर खुद-ब-खुद उसके आगे झुक गया। एक बादशाह अकिंचन शहंशाह की

बुलन्दी को पहचान गया। लेकिन फकीर फिर भी पहले की तरह निस्पृह शांत रहा। यदि उसके दिल में भी अभिमान हो जाता कि एक बादशाह को मैंने झुका दिया है तो ये अभिमान भी उसके लिए परिग्रह बन जाता, फिर पूर्ण अकिंचनता का आनंद उसे प्राप्त नहीं हो सकता था।

अकिंचन भिक्षुओं की Activ ty का अनुमान पहले से नहीं लगाया जा सकता। वे किस तरह का व्यवहार करें—ये किसी और द्वारा निर्धारित और संचालित नहीं होता। उनकी अंतरात्मा जो पुकारती है उसके अनुसार ही वे क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। उनका हर काम सहज और स्वाभाविक होता है। भले ही सामान्य व्यक्ति उनके व्यवहार से सहमत हो या न हो।

एक बार की बात है कि एक ऐसे ही अकिंचन, पहुंचे हुए संत रानी दास रमणी के काली मंदिर में आए। राम कृष्ण परमहंस वहीं रहा करते थे। एक दिन उस संत को भोजन नहीं मिला, किसी से मांगा भी नहीं। थोड़ी दूर पर एक कुत्ता झूठी रोटी खा रहा था और वह संत दौड़ कर कुत्ते के पास पहुंच गया। उसे गले से लगा लिया और कहने लगा—'तुम मुझे बिना खिलाए अकेले क्यों खा रहे हो?' उस रोटी का आधा हिस्सा खुद खा लिया। आसपास खड़े लोग दंग रह गए। एक सन्नाटा सा छा गया। राम कृष्ण परमहंस के भतीजे मुकर्जी से परमहंस ने कहा—'तुम उसके पीछे-2 जाओ, कुछ बात पूछो, जो वह कहे, मुझे आकर बताना।' मुकर्जी उसके पीछे-2 गया तो वह फक्कड़ संत पूछने लगा—मेरे पीछे-2 क्यों आ रहे हो? मुकर्जी ने कहा—'मुझे कुछ शिक्षा दीजिए।' तब उस संत ने कहा—'जब तू इस गंदे घड़े के पानी को और गंगाजल को समान समझेगा, जब इस बांसुरी की आवाज और इस जनसमूह की कर्कश आवाज तेरे कानों में मधुर लगेगी तब तू सच्चा ज्ञानी बन सकेगा।' ये बात कहकर वह ओघड़ बाबा आगे चला गया और मुकर्जी ने परमहंस को आकर बताया तो परमहंस ने कहा—'उस साधु को वास्तव में ज्ञान और भक्ति की कुंजी मिल चुकी है। पहुंचे हुए संत समदर्शी होते हैं।

शुनि चैव श्वपाके चैव पंडिताः समदर्शिनः।

मनुष्य का मन बहुत चंचल है। वह सब कुछ त्याग कर भी अंदर से कुछ बचा लेता है या फिर एक ढंग से छोड़ता है तो प्रकारान्तर से पकड़ लेता है। मन ने आज तक सर्व समर्पण का Bord r पार ही नहीं किया वह फिर अपनी दुर्बलताओं में घिर जाता है। जैसे आप गेंद को आसमान की ओर फैंको, तुरंत वापस आ जाती है। कुछ और जोर लगाकर फैंको कुछ ऊपर और चली जाएगी, लेकिन आना उसे नीचे ही है। धरती का गुरुत्वाकर्षण उसे वापस बुला लेता है। यदि उसे वापस नहीं लौटना तो एक ही शर्त है—उसे पृथ्वी को ही नहीं, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को भी पार करना होगा। तभी वह अन्य ग्रह-उपग्रह के दायरे में जा सकती है। वैज्ञानिक जितने भी सैटेलाइट छोड़ते हैं, उनका पूरा जोर इस बात पर होता है कि ये यान पृथ्वी के Grav tation से बाहर चला जाए। तीर्थंकर भगवन्तों का भी यही प्रयास रहा है कि तीर्थ में शामिल होने वाले साधक केवल भौतिक वस्तुओं के त्याग तक सीमित न रह जाएं। उन्हें भौतिकता भी छोड़नी है। भौतिकता छोड़ने पर ही वे अकिंचनत्व को प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा वे भी सेठ साहूकारों की तरह परिग्रही हैं।

बौद्ध धर्म शासन की एक मार्मिक घटना है कि एक शहर में एक पुरुष ने एक बहुमूल्य चन्दन से बना रत्न जड़ित प्याला ऊंचे खम्भे पर टांग दिया और वहां लिखवा दिया कि 'जो कोई साधक, सिद्ध या योगी इस शराव[1] को बिना किसी सीढ़ी या अंकुश आदि के एकमात्र चमत्कारमय मंत्र या यौगिक शक्ति से उतार लेगा, मैं उसकी सारी इच्छाएं पूर्ण कर दूंगा।'

उस पुरुष ने उस प्याले की देखभाल के लिए वहां कड़ा पहरा भी नियुक्त कर दिया था। उस प्याले की तथा तज्जन्य अन्य संभावनाओं की कल्पना करके काफी लोग उधर आए। उस प्याले को नीचे उतारने

1 प्याला

की कोशिश भी करते पर सफलता किसी को नहीं मिली। काश्यप नामक एक बौद्ध भिक्षुक उधर से गुजरा और वहां खड़ी भीड़ का कारण जानना चाहा। जब उसे पता चला कि खंभे पर टंगे प्याले को बिना किसी बाहरी साधन के नीचे उतारने की चुनौती है उससे नहीं रहा गया। वह निकट गया। प्याले की तरफ हाथ बढ़ाया और देखते ही देखते प्याला उसके हाथ में आ गया। भीड़ के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। चारों ओर धूम मच गई। काश्यप भी अपनी सफलता की संतुष्टि को लिए भगवान् बुद्ध के चरणों में पहुंचा। भीड़ तो उससे पहले ही पहुंच गई थी। सबने भगवान् बुद्ध से निवेदन किया—भगवन्, आप निःसंदेह महान् हैं क्योंकि काश्यप ही आपके शिष्यों में से एक है जो खंभे के ऊपर टंगे शराव को केवल हाथ उठाकर नीचे उतार सकता है। भगवान् बुद्ध ने काश्यप की ओर देखा तथा वह रत्नजड़ित शराव देने का संकेत किया। काश्यप ने शराव बुद्ध के कर कमलों में अर्पित कर दिया। बुद्ध ने उसे जमीन पर जोर से पटका और तोड़ डाला। फिर वे अपने शिष्यों की तरफ मुखातिब हुए और बोले—'सावधान, मैं तुम लोगों को इन चमत्कारों के प्रदर्शन और अभ्यास के लिए बार-2 मना करता रहा हूं। यदि तुम्हें इन मोहन, वशीकरण, आकर्षण और अन्यान्य मंत्र यंत्रों के चमत्कारों से जनता का प्रलोभन ही इष्ट है तो मैं सुस्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूं कि अद्यावधि तुम लोगों ने धर्म के संबंध में कोई जानकारी नहीं प्राप्त की। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो इन चमत्कारों से बचकर केवल सदाचार का अभ्यास करो।' ये है एक सद्गुरु का योगदान जो अपने अंतेवासियों के अन्तस्तल में बची-खुची लोकैषणा के अंश को भी खत्म कर दे। गुरु शिष्य के दोष खत्म तो नहीं कर सकता पर खत्म करने का मार्ग बता सकता है, प्रेरणा दे सकता है। चेतावनी और धमकी भी दे सकता है। हर आत्मा को आत्मशुद्धि तो स्वयं ही करनी होगी, गुरु तो निमित्त मात्र है। उपादान अपना तैयार होगा तभी तो निमित्त कुछ कर पाएगा। कबीर साहब ने गुरु को धोबी की उपमा दी है। वो लिखते हैं—

गुरु धोबी शिष्य कापड़ा, साबुन सिरजनहार,
सुरती शिला पर धोइए निपजै ज्योति अपार ॥

शिष्य अपने मन रूपी कपड़े को धुलवाने को तैयार हो तो भगवान् के नाम का साबुन काम आ सकता है, भक्ति की शिला काम आ सकती है। गुरु रूपी धोबी का प्रयास भी काम आ सकता है। मूल केन्द्र तो हर साधक की अपनी रुचि और इच्छा होती है। यदि अंदर की रुचि है तो हर दोष की शुद्धि संभव है, वर्ना कोई कितना ही जोर लगा ले कोई कार्य सिद्ध होने वाला नहीं है। भगवान् बुद्ध ने शिष्यों को संभाल लिया क्योंकि वे संभलने को तत्पर थे। नहीं तो काश्यप बुद्ध पर ही आरोप लगा देता कि ये मेरी शोभा से ईर्ष्या करते हैं, वह अपने पक्ष में Lobv बनाने की कोशिश करता। लेकिन नहीं, उसने ऐसा करना तो दूर, मन में भी नहीं सोचा।

हमारे गुरुदेव व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी म. की दीक्षा के कुछ ही वर्ष पूर्ण हुए थे। वे दृढ़ अनुशास्ता, गणावच्छेदक श्री छोटेलाल जी म., बहुसूत्री सरलात्मा श्री नाथूलाल जी म. तथा अन्य मुनियों के सान्निध्य में राजस्थान की यात्रा पर जा रहे थे। जयपुर पहुंचने से पूर्व श्री छोटेलाल जी म. को पैर में कांटा चुभ गया। वह कांटा इतना जहरीला था कि बहुत कोशिश करने पर भी ठीक नहीं हो पा रहा था। केवल एक कांटे ने वो रूप धारण कर लिया कि एक बार ऐसा लगा कि पैर को कटवाना पड़ सकता है। सौभाग्य से वो नौबत नहीं आई और वे कुछ-2 ठीक होने लगे। उस प्रक्रिया में पूरे एक साल तक जयपुर रुकना पड़ा। उस समय की बात है कि मध्याह्न में प्रतिदिन आगमों का सामूहिक वाचन होता था। एक बार आगम वाचन के दौरान चर्चा चली कि ये पाठ यदि विशेष विधि से साधा लाए जाए तो देवता को वश में किया जा सकता है। गुरुदेव श्री मदनलाल जी म. ने वह पाठ याद कर लिया और सोचने लगे—मैं इस पाठ की आराधना करूंगा तो देवता अधीन हो जाएगा और फिर देवता की सहायता से बड़े-2 कार्य

सिद्ध करवाए जा सकेंगे। उन्होंने रात के कुछ प्रहर उस पाठ के जाप में लगाने शुरू कर दिए। कुछ दिन बीते और उनकी साधना परिपूर्णता की ओर बढ़ने लगी। उन्हें इस तरह के संकेत भी मिलने लगे। सपनों का रुख भी ऐसा था कि काम बनने वाला है। उनके आसन के आसपास सर्प या अन्य प्राणी दिखाई देने लगे। उन्हें इनसे कोई भय या संकोच नहीं था। भय तो उनकी जिंदगी में था ही नहीं और अब तो वे विशेष रूप से संकल्पबद्ध थे। एक दिन अपने गुरुदेव श्री नाथूलाल जी म. के चरणों में बैठे थे। कहने लगे—गुरुदेव, आपकी कृपा से मुझे एक विशेष उपलब्धि होने जा रही है। गुरुदेव ने पूछा—क्या? तो बताने लगे कि ऐसे-2 फलां पाठ की साधना कर रहा हूं और पाठ पूरा होने में दो तीन दिन बाकी हैं, फिर देव वश में हो जाएगा। श्री नाथूलाल जी म. तो बहुत ऊंचे साधक थे। उनके कण-2 में संयम, विवेक, विनय एवं सरलता समाई हुई थी। वे शांति के देवता थे। बड़े प्यार से बोले—मदन मुनि, साधु को आत्मा वश में करनी है, देवता नहीं। इसलिए देवता को वश में करने वाला पाठ मुनि के लिए उपयोगी नहीं है। इसलिए छोड़ दे। अपने पावन गुरुदेव की हितभरी शिक्षा मिलते ही गुरुदेव जी म. ने वह पाठ तत्काल छोड़ दिया। एक बार भी ये नहीं कहा कि गुरु म. दो-तीन दिन की बात है, पाठ करने की आज्ञा देवें। वे गुरुओं की आज्ञा मानने वाले थे, गुरुमुखी थे, मनमुखी नहीं। गुरुमुखी शिष्य गुरुओं के अनुसार चलते हैं, मनमुखी अपने मन के मुताबिक। धर्म में गुरु की मर्जी चलती है, मनमर्जी नहीं। मर्जी एक मर्ज है जो आजकल बढ़ता जा रहा है। हमारे गुरुदेवों ने कभी अपनी नहीं चलाई, सदा गुरुओं के अनुसार चले। उन्होंने यही माना कि देवसिद्धि से संसार के लोगों के प्रति राग-द्वेष बढ़ेगा जिससे साधना भ्रष्ट हो जाएगी।

पूज्यपाद चारित्र चूड़ामणि श्री मयाराज जी म. का दनौदा गांव में अपने बोधि दाता गुरुदेव श्री गंगाराम, रतीराम जी म. से मिलना हुआ। उन्होंने श्री मयाराम जी म. के सामने अपना सारा भण्डार खोल दिया और कहने लगे—मयाराम, इसमें से जो तुझे चाहिए, ले ले। इस

भण्डार में बड़े-2 ऋद्धि-सिद्धि देने वाले चामत्कारिक मंत्र-यंत्र-तंत्र हैं। श्री मयाराम जी म. ने उनका मान रखते हुए उस भण्डार में से केवल दशवैकालिक सूत्र की एक Copy ली। बोले—मेरे तो ये दशवैकालिक ही काम आएगा। ऐसी थी उनकी लौकिक उपलब्धियों के प्रति निःस्पृहता। ये जिनशासन ऐसे ही महापुरुषों के बलिदानों पर जीवित रहा है। श्री मयाराम जी म. इस युग के अवतारी महापुरुष थे। उनका कण-2 त्याग तप की मिशाल था। भगवान् महावीर ने जो संदेश दिया था उसके वे मूर्तिमान् रूप थे। भगवान् का संदेश है कि दुःख मिटाने के लिए मोह दूर करना होगा। मोह दूर करने के लिए तृष्णा को जीतना होगा, तृष्णा को जीतने के लिए लोभ का सफाया करना होगा तथा लोभ का सफाया करने के लिए अकिंचनता, निस्पृहता, निष्परिग्रहता को पैदा करना होगा। इस अकिंचन भाव की आराधना साधना का अंतिम ध्येय है।

जो भव्य आत्माएं इस अकिंचनता की आराधना करेंगी उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

16. बदलना है मूल-वृत्तियों को

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी—

'मणं परियाणइ से निग्गंथे'[1]

जो व्यक्ति अपने मन को समझ लेता है वह अपनी ग्रंथियों को खोल लेता है। मनुष्य के लिए सबसे बड़ी पहेली उसका मन है। ये ऐसी अदृश्य शक्ति है जो मानव जीवन के प्रायः सभी पहलुओं को प्रभावित करती है। शरीर की स्वस्थता और अस्वस्थता की जड़ें भी मन में छिपी रहती हैं। पारिवारिक संवाद और विसंवाद का आधार भी मन को माना जाता है। बंध और मोक्ष, सुख और दुःख सब कुछ मन पर टिका हुआ है। **'अज्झत्थं सव्वओ सव्वं'** हर घटना, हर दृष्टि मन से निर्धारित होती है।

'मनः एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः,
बंधाय विषयासङ्गि मोक्षे निर्विषयं मतम्'।

मनुष्यों के बंधन और मुक्ति का कारण मन ही होता है। विषयों से जुड़ा हुआ मन बंधन का कारण है। विषयों से छूटा हुआ मन मोक्ष का कारण है। भारतीय, विशेषतः जैन मुनियों ने मानव के शरीर की जरूरतें पूरी करने की कोशिश नहीं की, न किसी को दवाई दी, न किसी को नीरोगता की गारंटी बक्शी, न धन-दौलत, तख्तो ताज का वरदान दिया।

1 आचारांग सूत्र

उन्होंने केवल अपने निकट आने वालों का मन बदलने का प्रयास किया था, जो मन विकारों में व्यग्र-व्यस्त था उसको धर्म, सेवा, उपकार तथा तपस्या की ओर मोड़ दिया।

एक जिज्ञासु फरीद के पास गया। उस समय फरीद साहब धान की पौध (पनीरी) लगा रहे थे। एक छोटे खेत से उखाड़कर बड़े खेत में लगा रहे थे क्योंकि धान की फसल का यही नियम होता है। जिज्ञासु ने फरीद साहब से पूछ लिया कि ईश्वर प्राप्ति का क्या तरीका है? फरीद ने अपने खेत के काम का उदाहरण देते हुए उसको उत्तर दिया—**'फरीदा रब्बदा की पाणा, इत्तों पुटणा उत्थे लाणा'** अर्थात् भगवान् को पाना क्या मुश्किल है सिर्फ अपने मन को विषयों से हटाकर प्रभु में लगाना होता है।

जिन साधकों ने कुछ ऊंचाइयों को हासिल कर लिया है उनके लिए तो प्रभु प्राप्ति कोई कठिन घटना नहीं है लेकिन जो अभी मानसिक आवेगों द्वारा संचालित होते हैं उनके लिए तो ये काम हिमालय को लांघने से भी ज्यादा दुरूह है।

गल्लां नाल वण्डना ज्ञान सोक्खा, ओक्खा मारणा हंकार दा है।
चंचल चित्त नहीं आँवदा मूल काबू, खुल्ला फिरदा उड़ारियां मारदा है॥
जिन्ना चिर चित्त नूं ना वश करिए, करम काण्ड न कुज संवारदा है।
सारा खेड़ है चित्त दा ही यारो, चित्त जितदा ते चित्त ही हारदा है॥

मन मान जाए तो हर कार्य आसान है, न माने तो हर काम मुश्किल है।

विक्रम संवत् 1700 (सन् 1643) के आसपास की बात है कि जैसलमेर राज्य के अंतर्गत बारु गांव में माधव सिंह चौहान नाम का एक डरावना डाकू रहता था। वैसे तो क्षत्रिय खानदान का था मगर उसके मन का स्वभाव रजोगुणी था। **'साक्षात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः'** जो दुर्बल लोगों को चोट हानि या प्रहारों

से बचाए वह क्षत्रिय होता है। लेकिन वह तो दुर्बलों को लूटता था। डाकुओं का संगठन बनाकर उनका सरगना बन गया था। आसपास के गांवों में लूटमारी करता था। कभी वह और उसका गिरोह जंगलों में डेरा जमा लेता, उधर से जो व्यापारी गुजरते उनको लूट लेता। दहशत के कारण सिंध से जैसलमेर की तरफ व्यापारियों का आना-जाना प्रायः बंद हो गया। फिर भी यदि कोई व्यापारी मजबूरी से या अनजाने से उधर से निकल जाते तो उसकी लूटपाट के शिकार हो जाते। एक बार सारे इलाके में अकाल पड़ गया, भूख से लोग मरने लगे। अनाज सिंध में मिल सकता था इसलिए कुछ यात्री सिंध से अनाज खरीदकर ऊंटों पर लादकर अपने इलाके की भूख मिटाने की भावना से आ रहे थे। जिस भीषण जंगल में डाकू माधव सिंह रहता था। वहां पहुंचते-2 सूर्य अस्त हो गया। रात का अंधेरा गहराने लगा, आगे रास्ता दिखाई नहीं देता था। ऐसे में अंधेरे में चलना खतरे से भरपूर था। लेकिन वहां ठहरने पर लुटने का डर था पर ठहरना ही पड़ा। रोटियां बनाई मगर खाई नहीं जा रही थीं। सब एक-दूसरे को कह रहे थे—खाना खा लो, खाना खा लो। मगर सभी विवशता में घिरे थे। सबके मुंह से एक ही बात निकल रही थी—माधव सिंह आ गया तो लुट जाएंगे और हमारे बाल-बच्चे बर्बाद हो जाएंगे। फिर किसी ने आवाज दी—'अब तो रघुनाथ जी ही रक्षा करेंगे।' ये सब बातें ओट में खड़ा माधव सिंह सुन रहा था। सारे हालात देखकर, हर बात को सुनकर उसका हृदय द्रवित हो उठा। पश्चात्ताप से कराहने लगा। हाय, मैं इतना पापी हूं कि मेरे कारण कितने ही घरों में दीपक नहीं जलते, रोटियां नहीं पकती। मैंने किसी का घर बसाया नहीं, उजाड़ा ही उजाड़ा है। मानव मन की ये विचित्रता और विशेषता है कि न मुड़े तो सदियों तक न मुड़े और मुड़ने लगे तो पलक झपकते ही मुड़ जाए। ये नहीं समझना चाहिए कि क्रूर हमेशा ही क्रूर रहता है। वह भी दयालु हो सकता है।

कहते हैं संगेदिल से आंसू नहीं निकलते,
जो ये सच है तो क्यों झरने निकलते हैं पहाड़ों से ॥

उसी भावावेश में वह यात्रियों के सामने प्रकट हो गया। शस्त्रास्त्रों से लैस, रोबीले माधव सिंह को देख सब घबरा गए। रोटियां, सामान, ऊंटों को छोड़ जान बचाने के लिए भागने लगे, चीखते-चिल्लाते, बचाओ-2 कहते हुए। लोगों को आश्वस्त करते हुए माधव सिंह ने कहा—भाइयों, डरो मत, तुम आराम से भोजन करो, रात भर यहीं रहो। मैं तुम्हारे साथ लूट-पाट नहीं करूंगा और मेरी सम्मति के बिना मेरे साथी भी तुम्हें हाथ नहीं लगाएंगे। लोगों की घबराहट कम हुई और धीरे-2 दिल टिक गए। माधव सिंह रात भर वहीं बैठा रहा। आग जला ली, आंखों में आंसू आ गए। डाकुओं वाले सारे कपड़े उतारे और आग में डाल दिए। कपड़े तो राख हुए ही, जिंदगी भर की मलिनता भी राख होने लगी। दिन निकलने से पहले उसके साथी भी आ गए। उसकी बदली हालत देखी तो कहने लगे—'ये आपने क्या कर लिया?' माधव सिंह ने स्पष्ट निर्णय सुनाते हुए कह दिया—'भाईयों, तुममें से जो सत्य और अहिंसा से अपना उद्धार करना चाहे वह मेरे साथ रहे। मैं अब कलंक को धोकर अपना जीवन पवित्र करूंगा।' सभी डाकू उसके जीवन परिवर्तन से प्रभावित हो गए। उन्होंने भी डकैती का धंधा छोड़ दिया और सात्विक ढंग से अपना गुजारा करने लगे। माधवसिंह तो पूरी तरह धर्म में लीन हो गया। यही माधव सिंह बाद में माधव दास वीतराग महात्मा के रूप में उस इलाके में मशहूर हुए। उनकी याद में कोड़मदेसर में एक स्थान भी बना हुआ है।

कहने का अभिप्राय ये है कि किसी भी आत्मा में प्रभु की लौ जगमगा सकती है। कोई भी हृदय पावन हो सकता है। किसी की जिंदगी में सूर्यमुखी फूल खिल सकते हैं। सवाल केवल मन के मानने न मानने का है। मन माने तो आदमी पहाड़ को भी उठा सकता है, न माने तो रत्ती भर भार उठाने में लाचार हो सकता है।

भगवान् महावीर के संपर्क में आकर अर्जुन माली जैसा हत्यारा सुधर गया। दृढ़ प्रहारी तस्कर का जीवन बदल गया। रौहिणेय डाकू ने भगवान् के चार बोल सुने तो डाकाजनी छोड़कर महाव्रत मार्ग अपना लिया।

महात्मा बुद्ध की शरण में अंगुलिमाल बदल गया। हर युग ने ऐसे चमत्कार देखे हैं—जिन कोनों में चिरकालीन अंधकार का साम्राज्य था उन्हीं कोनों ने रोशनी की सौगात लुटाई थी।

ऐसी ही एक Positive घटना पिछली सदी में बाबा कमली वाले के सान्निध्य में हुई थी। एक बार बाबा अपनी भक्त मण्डली के साथ भजन कीर्तन में लगे हुए थे। प्रभु प्रार्थना के स्वर हृदय के तारों को झनझनाकर होठों से प्रवाहित हो रहे थे तथा शांत नीरव वातावरण को गुंजायमान कर रहे थे। तभी एक व्यक्ति घोड़े पर सवार होकर आया। नमस्कार करते हुए पत्र थमा कर चला गया। बाबा जी ने पत्र पढ़ा और आसन के नीचे रख दिया, फिर उसी मस्ती में लीन हो गए। उनके गीत अविराम बह रहे थे पर निकट स्थित भक्तों के दिल और दिमाग व्यग्र हो गए। खुसरपुसर करने लगे—शायद पत्र का मसविदा गंभीर है जो कीर्तन के बीच दिया गया। ऐसा कभी नहीं होता कि कोई आदमी बाबा के कीर्तन के बीच में कोई व्यवधान डाले। भक्तों की इस उत्सुकता को शांत करने के लिए एक मुंहलगे भक्त ने बाबा जी से पूछ ही लिया—'गुरुदेव यह पत्र किसका है तथा इसमें कोई विशेष संदेश है क्या?' बाबा हंसकर बोले—'क्या करोगे पूछकर?' लेकिन भक्तों का आग्रह बढ़ता ही गया तो उन्होंने बताया कि पत्र सुल्ताना डाकू का है और उसने 5 हजार रुपए मांगे हैं। लिखा है कि मैं अमुक जगह पर आज सायंकाल आऊंगा और 5 हजार वहां ले आना। नहीं लाए तो आश्रम और आश्रम वासियों को लूट लिया जाएगा। और यदि सरकारी तंत्र को सूचना दी तो कई जानें चली जाएंगी, कई खून हो जाएंगे। डाकू सुल्ताना का नाम ही दहशत का पर्याय था। लोग वैसे ही कांप जाते

थे और सीधी चिट्ठी ही आ गई तो सबका होश गुम हो गया। कहने लगे—गुरुदेव, वह तो बहुत जालिम है। सारा इलाका उससे आतंकित है। पर आपने तो पत्र ऐसे रख दिया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

भक्तों को बाबा का व्यवहार अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक लगा। उन्हें क्या पता था कि ये किस स्तर पर जीने वाला महात्मा है। सामान्य लोगों को तो केवल बाह्य क्रियाएं ही नजर आती हैं। अंतरात्मा की महानता को कौन पहचान पाता है? लोग इसी कारण बहुधा भ्रांति के शिकार हो जाते हैं। बाहर की कठोर क्रिया देखकर मुग्ध हो जाते हैं जबकि हो सकता है कि वह क्रियावान् संन्यासी भीतर से छल, माया, वासना, ममता, आसक्ति का पिटारा हो। इससे कभी-2 उल्टा भी हो सकता है कि कोई संन्यासी बाहर से अधिक सख्त आचरण वाला न हो पर अंदर से पूर्ण तथा अनासक्त एवं निर्विकार हो।

All tha t lg itters is ot gl d यह तो साधु-2 के बीच की बात है। भगवान् महावीर ने तो यहां तक कहा है कि कोई गृहस्थ घर में रहता हुआ अन्तर्मन से साधुओं को भी पार कर जाए। दिखने को वह घर में है, बाल-बच्चों वाला है, काम-धंधा करता है, धन-दौलत का मालिक है मगर वास्तविकता के धरातल पर वह इन सब बाहरी वस्तुओं से बिल्कुल अलग-थलग हो। एक घर की नेम प्लेट की जगह लिखा हुआ था—**'इदन्न न मम'** यह घर मेरा नहीं है। ऐसी विचारधारा के लिए प्रमाण देते हुए प्रभु ने फरमाया है—**'संति एगेहिं भिक्खुहिं गारत्था संजमुत्तरा'** कुछ भिक्षुओं से कुछ गृहस्थों का संयम स्तर ऊंचा होता है। इसलिए बाहर का रूप रंग देखकर ही Jg men नहीं किया जा सकता।

ऐसा हुआ कि एक दरवेश एक सूफी फकीर से मिलने के लिए उसके दर पर आया। देखकर आश्चर्य हुआ कि सूफी फकीर एक सुन्दर खेमे में (टैण्ट में) मखमल की गद्दी पर बैठा है। उसे हैरानी तो इस बात की हुई कि खेमे की रस्सियां सोने की खूंटी से बंधी हुई है। कुछ

देर बैठा रहा। कुछ सतही बातें करता रहा। आखिरकार अपने मन की पीड़ा उसने प्रकट कर ही दी। कहने लगा—'पीर साहब, मैंने आपकी रुहानियत की बड़ी तारीफ सुनी थी। लेकिन आपके शाही ठाठ देखकर अफसोस हो रहा है।' पीर साहब बोले—'मैं आपके साथ सभी कुछ छोड़कर अभी तुरन्त चलने को तैयार हूं। और सचमुच पीर साहब चल दिए, जूते भी नहीं पहने। थोड़ी देर बाद पीर साहब को लगा कि दरवेश कुछ परेशान सा है। उसने पूछ ही लिया—'आपको कोई परेशानी तो नहीं है?' दरवेश बोला—'आपने इतनी जल्दबाजी की कि मैं अपना कटोरा खेमे में ही भूल आया।' पीर ने हंसकर कहा—'दरवेश साहब, क्या आपके कटोरे ने अभी तक आपका पीछा नहीं छोड़ा?' लेकिन मेरे खेमे की सोने की खूंटियां मेरे सीने में नहीं गड़ी, अपितु वहीं जमीन में गड़ी थी। दरवेश शर्म के मारे पानी-पानी हो गया। प्रदर्शन और स्वदर्शन में बहुत फर्क होता है।

तुम संसार में रहो इससे कुछ नुकसान नहीं होगा। नुकसान तब होगा जब संसार तुममें रहने लग जाए। निश्चय और व्यवहार दो प्रकार की सोच है। केवल निश्चय की धारणा भी एकांतवाद है, केवल व्यवहार की धारणा भी एकांतवाद है। व्यक्तिगत साधना में निश्चय संयम को प्रमुखता दी जाती है। सांघिक मर्यादा में व्यावहारिक संयम को। भ. महावीर ने दोनों पक्षों की आवश्यकता और अनिवार्यता को माना है। आदमी प्यासा है, उसकी प्यास तो पानी से ही बुझेगी। लेकिन उस पानी की सुरक्षा गिलास, लोटे या घड़े में होगी। केवल पानी या केवल पात्र को प्यासे के लिए अनिवार्य कहना भ्रांति है। एक अपेक्षा से पानी अनिवार्य है तो दूसरी अपेक्षा से बर्तन भी अनिवार्य है। यदि हम कभी-2 निश्चय पर बल दे रहे हैं तो इसका अभिप्राय इतना ही होता है कि हमें बाहरी आचरण को ही अंतिम नहीं मान लेना चाहिए। बाहरी आचरण या तो अन्तर की अनुभूति से उत्पन्न हुआ हो या अन्तर की अनुभूति का उत्पादक हो। इसी तरह जब हम व्यवहार संयम की जोरदार वकालत कर रहे होते हैं तब हमारा भाव होता है कि संघ, समाज और संस्कृति

की सुरक्षा भी हमें करनी चाहिए। केवल भाव संयम का राग अलापने मात्र से काम नहीं चलेगा। इस समय बात चल रही है—ऐसे महात्माओं की जो अन्तर के जगत को इतना ऊंचा और उम्दा बना लेते हैं कि उन्हें बाहरी बातों की व्यावहारिकता की ओर ध्यान ही नहीं रहता। जैसे उस सूफी फकीर की दृष्टि थी। कुछ ऐसी ही दृष्टि Greek Philosopher Socrates (सुकरात) की थी। अंदर से इतना महान् हो चुका था कि बाहर के कपड़ों की चिंता ही नहीं होती थी। कभी फटे-पुराने चीथड़े शरीर पर रह जाते तो भी परवाह नहीं। अगर बिल्कुल ही नहीं रहते, नग्न हो जाता तो भी पूरी मस्ती और शांति रहती। सुकरात की महानता को पहचानने वालों में, उसे अपना गुरु मानने वालों में Plato (प्लेटो) जैसा महान् दार्शनिक भी था तथा प्लेटो का शिष्य Aristotal (अरस्तू) भी था। ऐसे धुरंधर दार्शनिक जिस आदमी को सिर झुकाते हों, उसकी चर्चा कहां-2 चली जाती होगी। ये आप कल्पना कर सकते हो। जनता में यही चर्चा होती थी कि सुकरात महान् आदमी है। शरीर के कपड़ों की तरफ उसका ध्यान ही नहीं है। उसके त्याग की चर्चा इस युग के दूसरे बड़े फकीर Diogenes (डायोजनीज) के कानों में भी पड़ी। वह भी कोई साधारण तपस्वी नहीं था। उसने तो वस्त्रों को सर्वथा छोड़ रखा था। नग्न देह धूप में पड़ा रहता था। लोग उसे भी, उसके निखालिस नग्नत्व को भी बहुत सम्मान देते थे। उसके मन में एक बार ख्याल आया कि मैं खुद सुकरात की चर्या देखकर आऊं, वह कैसे रहता है। डायोजनीज सुकरात के पास आया। उससे कुछ दिन पूर्व कोई भक्त सुकरात को बहुमूल्य पोशाक दे कर गया था और सुकरात ने वह पहन रखी थी। जैसे ही डायोजनीज आया और सुकरात की शाही पोशाक देखी तो उसका माथा ठनक गया। सोचने लगा—असली त्यागी तो मैं हूं। मैंने वस्त्रों को बिल्कुल छोड़ रखा है जबकि ये महंगी पोशाक धारण किए हुए हैं। उसी भावना में बहते हुए उसने सुकरात से कहा—मैंने तो सुना था कि तुम ज्ञानी और सरल हो। पर देख रहा हूं कि तुमने बड़े सुंदर कपड़े पहन रखे हैं। सुकरात धीरे-2 मुस्कुराए और बोले—‘शायद

ऐसा ही हो।' डायोजनीज तो प्रसन्न हो गया। उसे लगा कि मैंने बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली है। इसलिए प्लेटो तथा अरस्तू की ओर मुखातिब होते हुए व्यंग्यपूर्वक कहने लगा—'देखो, अब तो तुम्हारे गुरु ने भी स्वीकार कर लिया है—वे सरल और त्यागी बिल्कुल नहीं है। अरस्तू तो चुप रहा पर प्लेटो से रहा नहीं गया। उसने जवाब दिया—'इन्होंने ज्ञान, त्याग और सरलता, साधुता का बाना नहीं पहन रखा है और न ही तुम्हारी तरह से त्याग का प्रदर्शन कर रहे हैं। इन्हें अपने त्याग और ज्ञान का अहंकार नहीं है जबकि तुमने तो अपने नंगे शरीर को पोस्टर बना रखा है। इस नंगेपन में कोई सरलता नहीं है। प्रयत्न करके नंगे होने में सरलता कैसे होगी? सरल वह होता है जो अनायास हो तथा अभिमान भी नहीं करता हो। धर्म और तप का प्रदर्शन भी अहंकार है।'

प्लेटो ने अपने मन की बात डायोजनीज के सामने रख दी। पता नहीं सुनने वाले को समझ आई या नहीं। वैसे संभावना यही है कि कम ही समझ आई होगी। दूसरे की बात कौन समझता है, सब समझे समझाए बैठे हैं। सबको अपना चिंतन, अपना प्रवचन, अपना आचरण सर्वश्रेष्ठ लगता है। दूसरा तो निरा बुद्धू ही होता है। पिता को पुत्र अनुभवहीन, बच्चा, नादान नजर आता है तथा पुत्र को पिता अनपढ़, ज्ञानहीन और अड़ियल लगता है। हर क्षेत्र में असहिष्णुता का माहौल छाया हुआ है इसीलिए आपसी संवाद टूटा हुआ है। किसी को सच्चाई से सरोकार नहीं है। सबको चाहिए अपनी अहमियत। यदि आपको अहमियत नहीं मिल रही तो सब बेकार है। यदि मिल रही है तो सब अच्छा है।

लिहाजा, प्रसंग चल रहा था कमली वाले बाबा के पास सुल्ताना डाकू का। फिरौती का पत्र आया तो भी वे विचलित नहीं हुए। भक्तजनों की घबराहट को देखते हुए उन्होंने कहा कि आप सब लोग अपने-2 सुरक्षित स्थान पर चले जाएं। लोग चले गए। बाबा ने आश्रम की सारी संपत्ति इकट्ठी कर ली और निश्चित जगह पर ढेर लगा दिया। स्वयं

वहां भक्ति में लीन होकर बैठ गए। नियत समय पर सुलताना डाकू आया। बाबा को देखकर सहज ही सिर झुक गया। पहली बार जिंदगी में किसी की अभय मुद्रा देखी थी। डाकू कुछ बोलता उससे पहले ही बाबा ने कहना शुरू कर दिया—'मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुमने तो 5 हजार रुपयों के लिए लिखा था, लेकिन मैं तो सारी संपत्ति यहां ले आया हूं जितनी तुझे आवश्यकता हो ग्रहण कर ले क्योंकि यह संपत्ति दीनहीन व्यक्तियों के अन्न जल की व्यवस्था के लिए एकत्रित की है। एक-एक पैसा किसी जरूरतमंद के लिए है। यह पवित्र धन है। भीख मांग-2 कर यह धन इकट्ठा किया है। इसका दुरुपयोग न हमने किया है, न किसी को अनुमति दी जाती है। मेरा तुमसे इतना ही कहना है कि तुम इस संपत्ति को ले जाओ मगर किसी की भूख शांत करने वास्ते ले जाना, किसी के विनाश के लिए नहीं।'

बाबा के शब्द अन्तरात्मा से निकल रहे थे। उन्हें लग रहा था कि संसार में विध्वंस का इतिहास रचने वाले बहुत हैं, निर्माण का अध्याय लिखने वाले कम हैं। उनकी भावना को एक गजलकार ने बड़े अच्छे ढंग से यों पिरोया है—

लगी जब आग बस्ती में बुझाने तुम नहीं आए।
उठाने के लिए अब अस्थियां बारात ले आए ॥
सिराने[1] हम कहां जाते यहां दरिया नहीं कोई।
बताकर राख मंदिर की उसे हम बेचने आए ॥
नजारे खुशनुमां मिलते, यहां दो पल ठहर जाते।
हमें तो छांव में भी धूप के कतरे नजर आए ॥
उन्हें गर शौक है अपने लहू से होलियां खेलें।
हमारे खून से क्यों होलियां वे खेलने आए ॥
मुसीबत के सभी मारे उन्हें ऐसे न बहलाओ।
कोई मरहम लगाओ जख्म में कांटे उभर आए ॥

---

1 बहाने के लिए

अजब तहजीब है इस गांव की तुमसे बताएं क्या,
'भ्रमर' को राह दिखलाने कई अंधे चले आए ॥

बड़े विलक्षण थे बोल कमली वाले बाबा के। बात बोल की भी नहीं है, उनका जीवन ही विलक्षण था। जो जिंदगी के राज को पा जाते हैं उनकी हर क्रिया ही असामान्य और असाधारण हो जाती है। उनकी चाल को हर आदमी नहीं पकड़ पाता।

एक बार गुरु नानकदेव अपने शार्गिद बाला मरदाना तथा कुछ भक्तों के साथ एक गांव से दूसरे गांव का भ्रमण कर रहे थे। किसी ऐसे गांव में पहुंचे जहां लोग बड़े उद्दण्ड, उज्जड़ और जाहिल थे। उन्होंने गुरु नानक देव सहित सारी मण्डली को परेशान करना शुरू कर दिया। जिस तरह अनार्य देश में भगवान् महावीर के साथ वहां के अनाड़ी लोगों ने बदसलूकी की थी। ऐसे ही उस गांव के लोगों ने गुरु नानकदेव के साथ दुर्व्यवहार किया। उन्होंने वहां से आगे जाने में ही उचित लगा। चलते-2 उन्होंने कहा—यहां के निवासियो, यहीं बसे रहो। शिष्य बड़े प्रभावित हुए कि गुरु सा. ने अपराधियों के प्रति भी शुभकामना की है। ये अच्छे संत की विशेषता होती है कि विरोध करने वाले को भी शुभाशीष देते हैं। चन्दन का वृक्ष काटने वाली कुल्हाड़ी को भी खुशबू से भर देता है। ऐसे ही गुरु नानकदेव हैं। गुरु आगे बढ़े। अगले गांव में उनका भावभीना स्वागत हुआ। लोगों ने उनके आगमन को अपना सौभाग्य माना। सारी संगत के ठहरने और भोजन का प्रबंध किया। अगले रोज जब गुरु नानक देव वहां से चलने लगे तो उन्होंने कहा—'तुम उजड़ जाओ।' गांव वालों ने तो इस वाक्य को बुरा नहीं समझा पर गुरु के नजदीकी भक्तों को ये बात बुरी लगी। मर्दाना ने हिम्मत जुटाकर पूछ लिया—'गुरु महाराज, आपने जो बातें कहीं वो मुझे तथा सभी साथियों को समझ नहीं आई। इस गांव के लोग इतने भले हैं फिर भी आपने इन्हें उजड़ने का शाप दे दिया। जबकि पिछले गांव में उद्दण्ड लोगों को बसने का आशीर्वाद दिया। ऐसा क्यों?' गुरु नानकदेव ने रहस्य खोलते

हुए कहा—वत्स, सज्जनों के लिए शाप नहीं संदेश दिया है कि वे इस छोटी सी दुनिया को छोड़ पूरे संसार में फैल जाएं। ये जहां भी जाएंगे अच्छाई की मशाल बनकर दुनिया को रोशनी देंगे। यहां रहते-2 इनके गुणों की खुशबू फैल नहीं पाएगी। ये गांव-2, शहर-2 अपने सद्गुणों का प्रसार करें और ये तभी होगा जब ये यहां से बाहर निकलेंगे। उजड़ जाने के पीछे मेरा यही संकेत और संदेश था तथा वे दुष्प्रवृत्ति के लोग अपने छोटे दायरे में ही सीमित रहें ताकि उनके दुर्विचार, दुर्व्यवहार का प्रभाव दूसरों पर न पड़े। जितनी तंग जगह में वे बसे रहेंगे उतना ही संसार सुरक्षित रहेगा। गुरु नानकदेव की गहरी और दूरदर्शिता पूर्ण व्याख्या सुनकर शिष्य संतुष्ट और नतमस्तक हो गए।

मेरा कहने का भाव ये है कि महापुरुषों के शब्द और आचरण का रहस्य हर आदमी नहीं समझ सकता। वे अलग ढंग से बोलते हैं, अलग ढंग से चलते हैं, अलग ढंग से काम करते हैं।

बाबा कमली वाले का उद्बोधन बड़ा गजब का था। उन्होंने सुलताना डाकू को इतना प्रभावित कर दिया कि वह ग्लानि से भर गया। चरणों में गिरकर क्षमायाचना करने लगा। कहने लगा—'मैं घोर अधम प्राणी हूं। आप जैसे महापुरुष को मैंने कष्ट दिया, इसके लिए आप मुझे माफ कर दें। मैं आज से पाप-प्रवृत्ति का त्याग करने का संकल्प लेता हूं। आज तक पाप से जो संपत्ति अर्जित की है, उसे जनकल्याण के लिए अर्पित कर रहा हूं।' उस दिन के बाद तो सचमुच उसने डाका भी छोड़ दिया और सज्जन वृत्ति का मानव बन गया।

तो मैं अपनी मूल बात पर आ रहा हूं। आप भूले तो नहीं होंगे कि मनुष्य के पास तन वचन और मन तीन ताकतें हैं। तन की ताकत सामने वाले के तन को प्रभावित करती है। अधिक देहबल वाला कम बलवान् को कुचल सकता है, पटक सकता है, हरा सकता है। वचनबल से सामने वाले के मन को घायल या तंदरुस्त कर सकता है। जिसकी वाणी विषाक्त है वह अन्य के मन को आकुल-व्याकुल कर देता है।

जिसकी वाणी मधुर एवं प्यारी है वह दुःखी उदास मन को प्रसन्नता प्रदान कर सकता है। इस तरह शरीर बल और वचन बल पर को प्रभावित करते हैं, जबकि मनोबल अपने को बदलता है, प्रभावित करता है। तीव्र मनोबल से अपने कषायों को जीता जा सकता है, अपने शरीर को समर्थ बनाया जा सकता है जबकि क्षीण-हीन मन वाला व्यक्ति कषायों से पराजित हो जाता है, आदतों का संशोधन नहीं कर पाता, स्वस्थ शरीर को भी रुग्ण बना लेता है। वातावरण की सुखदता को उदासी और शोक में परिवर्तित कर लेता है। अपनी जिंदगी का 90 प्रतिशत कार्यक्षेत्र मन के द्वारा संचालित होता है। वचन और तन तो दोनों मिलकर 10 प्रतिशत कार्य करते हैं। इसीलिए तो कहावत बनी है—'मन के जीते जीत है, मन के हारे हार।'

आद्य शंकराचार्य के शिष्य ने प्रश्न पूछा था—'जितं जगत् केन?' गुरुदेव आप विश्व विजेता किसे मानते हो? उन्होंने एक ही Sen en e में उत्तर दे दिया, कोई लंबा-चौड़ा व्याख्यान या भाष्य नहीं किया। बोले—'मनो हि येन' मन को जीतने वाला विश्व विजेता है। न उन्होंने किसी चक्रवर्ती सार्वभौम सम्राट् का नाम लिया, न किसी सेनाध्यक्ष का। बस एक ही बात कही—'मन को जीतना ही विश्व को जीतना है।'

आजादी से पहले की घटना है कि भारत में दो बड़े पहलवानों का नाम चलता था। एक पहलवान था अंग्रेज़ Eg n Sadw (यूजियन सैण्डों), दूसरा पहलवान था—हिन्दुस्तानी राममूर्ति। राममूर्ति के बारे में कहा जाता है बचपन में वह बहुत कमजोर और रोगों से घिरा हुआ था। दमे की बीमारी से परेशान रहता था। देह से दुर्बल उस आदमी की एक विशेषता थी कि उसका संकल्प बल बड़ा गज़ब का था। जो मन में निश्चय कर लेता था, उसे कर ही डालता था। कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति हो, घबराता नहीं था। धीरे-2 उसे अहसास हो गया कि मैं अपने मनोबल से अपनी प्राणशक्ति को कई गुणा बना सकता हूं। यदि प्राण शक्ति सबल हो जाए तो ये शरीर असंभव कार्य भी कर सकता

है। राममूर्ति ने अपने दमे के रोग को ही पस्त, परास्त नहीं किया अपितु अखाड़ों में पुराने जमे हुए पहलवानों को भी मिट्टी सुंघाने लगा। उसने ऐसे-2 प्रयोग भी किए कि न केवल भारतीय ही, अपितु विदेशी भी उसका लोहा मानने लगे। अपने से ज्यादा Medal जीतने वाले युंजियन सैण्डो को भी उसने संदेश भिजवाया कि आओ दोनों कुश्ती कर लेते हैं। सैण्डो जानता था कि मैं इसका मुकाबला नहीं कर पाऊंगा क्योंकि मैं ज्यादा से ज्यादा 800 रतल वजन उठा सकता हूं जबकि राममूर्ति 1200 रतल वजन उठा सकता है। इसलिए उसने एक बहाना घड़ दिया—'हम गोरे लोग हैं, हम हिन्दुस्तानियों से हाथ नहीं मिलाते।' जवाब सुनकर राममूर्ति को बहुत दुःख हुआ, इस बात का नहीं कि उसको शिकस्त नहीं दे सका बल्कि अपने देश का अपमान हुआ है इस बात का दुःख था। अपनी पीड़ा को प्रकट करने और उसका समाधान पाने राममूर्ति लोकमान्य तिलक के पास गए और सारी हकीकत कह सुनाई। निवेदन किया कि युंजियन सैण्डो मुझसे कुश्ती नहीं कर सकता। उसे अपने पर इतना विश्वास नहीं है, मेरा मुकाबला करे, लेकिन कुश्ती न करने का बहाना बना रहा है कि हिंदुस्तानी काले होते हैं, इसलिए कुश्ती नहीं करूंगा। यह हमारे देश का अपमान है। आप मेरा मार्गदर्शन करें।

तिलक कहने लगे—'युंजियन सैण्डो तुम्हारे साथ कुश्ती नहीं करेगा। किसी को कुश्ती के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता लेकिन आप ऐसा काम करके दिखाओ जिससे समस्त संसार को ये ज्ञात हो जाए कि राममूर्ति क्या चीज है तथा भारतवासी यदि ठान लेते हैं तो कुछ से कुछ कर सकते हैं। उसके द्वारा प्रयोग किए गए वाक्यों से भारत का अपमान नहीं होता। हां, तुम्हारे किए गए अद्‌भुत कार्यों से भारत का सम्मान बढ़ेगा।' तुम कोई ऐसी योजना बनाओ और उसके तहत विश्व स्तर पर प्राण शक्ति के कुछ प्रयोग कर दिखाओ कि दुनिया तुम्हारे और इस देश के गौरव की कायल हो जाए। तिलक का सुझाव पसंद आ गया। राममूर्ति ने एक सर्कस चलाया। उसमें उसने प्राण शक्ति के अद्‌भुत प्रयोग करके दिखाए। जैसे कि एक प्रयोग में वे 25 होर्स पावर

की जीपों को दोनों हाथों से पकड़ लेते हैं, ड्राईवर जीपों को चालू कर देते हैं, जीपों के पहिए घरघराने लगते हैं पर वहीं के वहीं घूमते रहते हैं। क्या मजाल एक फुट भी गाड़ी आगे सरकती हो क्योंकि राममूर्ति ने अपनी मानसिक ऊर्जा से शरीर की प्राणवत्ता को सक्रिय किया हुआ था। दूसरे प्रयोग में राममूर्ति लेटकर छाती पर एक फट्टा रखवा लेते, उस फट्टे पर हाथी आकर चहलकदमी करता है। तीसरे प्रयोग में एक बैलगाड़ी में 16 आदमी बैठे हैं और उस गाड़ी का पहिया राममूर्ति के शरीर पर चढ़ाया जाता है पर राममूर्ति का बाल भी बांका नहीं होता। इस तरह के कितने ही अद्‌भुत प्रयोग राममूर्ति ने सर्कस में जगह-2 दिखाए जिससे सारा संसार उसके देहबल, प्राणबल तथा मनोबल का कायल हुआ। और तो और यूंजियन सैण्डो जैसे धुर विरोधी को भी मानना पड़ा कि ऐसी ताकत मेरे पास नहीं है। इस सारी ताकत का मूल स्रोत मन में ही छिपा हुआ है। मन से बढ़कर कोई बलवान् नहीं है।

मन का अधिकतम विकास मनुष्य में हुआ है। शेष योनियों में भी मन है। मगर वे मन के उच्चतम स्तर या निम्नतम स्तर को नहीं छू सकते। देवता शारीरिक सुखों में इतने विलीन और मस्त रहते हैं कि मन की शक्ति का वे विस्फोट करना ही भूल जाते हैं। नरक के प्राणी शरीर की पीड़ाओं से इतना संत्रस्त और विक्लव होते हैं कि मानसिक उत्थान की ओर ध्यान ही नहीं दे पाते। पशु-पक्षी भी अपने दिलो दिमाग का प्रयोग ज्यादातर अपनी घास चारे की समस्या, चुग्गापानी की उलझन सुलझाने में लगे रहते हैं। लेकिन मनुष्य शरीर से ऊपर उठकर मानसिक धरातल पर जीना जानता है। इसी कारण वह सभी नरकों में जा सकता है, सभी देवलोकों में जा सकता है तथा मोक्ष तक में भी जा सकता है।

किसी ने मुझसे पूछा—गुरु महाराज, शरीर की खुराक तो दाल रोटी से पूरी हो जाती है मगर मन की खुराक क्या है? कितना अच्छा सवाल था। कोई दिमागदार आदमी ही ऐसे सवाल पूछते हैं। ज्यादातर श्रावक तो अपने घर कारोबार की समस्याएं ही लाकर हमारे सामने पेश कर

देते हैं। उन्हें इस बात से कोई सरोकार नहीं है कि गुरु म. के सामने ये बातें करनी हैं या नहीं करनी। हमारे गुरु म. फरमाया करते कि एक गृहस्थ तो माल का छत्ता (मधुमक्खियों का) होता है। जैसे हजारों, लाखों मधुमक्खियां एक फुट के Diameter में समाई रहती हैं लेकिन एक बार कोई उन्हें छेड़ दे तो बस छेड़ने की देर है, मीलों-2 तक फैल जाती हैं और शरीर पर डंक मार-2 कर सुजा देती हैं। ऐसे ही गृहस्थों को जब तक न पूछो तो उनके दुःख अंदर तक सिमटे रहते हैं। पर एक बार उन्हें छेड़कर देख लो फिर तो उनके दुःखों का कोई ओर छोर नहीं रहता। गृहस्थ अपने दुःखड़े सुनाने ज्यादा आते हैं, धर्मध्यान करने कम।

लिहाजा बात चल रही थी एक युवक की। उसने पूछा—मन की खुराक क्या है? मैंने उसे Bib e का एक वाक्य सुनाया। बड़ा प्यारा Sen en e है। Man de s nt liv by b ead alon , h liv s by love. मनुष्य केवल रोटियों के भरोसे नहीं जीता, वह प्यार के सहारे पर जिन्दा है। पशु का जीवन तो खाली घास-पात से चलेगा क्योंकि वह शरीर में जीता है। मनुष्य को प्यार की जरूरत है क्योंकि वह मन में जीता है।

जैसे-2 सभ्यता का विकास होता गया और हो रहा है वैसे-2 कुछ पशु जो मानव के संपर्क में आ गए हैं जिन्हें हम Domestic या पालतू कहते हैं उनका मानसिक स्तर कुछ ऊंचा उठा है। गाय, कुत्ते आदमी की तरह प्यार लेने और देने लगे हैं। वे प्यार की भाषा को, प्यार भरी निगाहों को, प्यार भरे आगोश को, प्यार से भरे दिल को कुछ-2 पहचानने लगे। यही उनके विकास का इतिहास है। एक Practical घटना सुनाता हूं। आचार्य विनोबा भावे के पास एक आदमी बैठा था। तरह-2 की चर्चा चल रही थी। उसी दौरान उसने अपनी एक समस्या सुना दी—'बाबा जी, मैंने शौक से एक बहुत महंगा घोड़ा खरीदा था लेकिन मैं उस पर आज तक सवारी नहीं कर पाया। जैसे ही मैं उस पर सवारी करने के लिए बैठता हूं वह मुझे गिरा देता है। मुझे तो लगता

है कि ऐसे तो मेरे हजारों रुपए पानी में बह जाएंगे।' विनोबा जी ने पूछा—एक बात बताओ, उस घोड़े की देखभाल, सेवा-शुश्रुषा, दाना-पानी कौन करता है? तुम करते हो या नौकर करते हैं?

वह रईस बोला—उसकी सेवा के लिए मैंने एक स्पेशल नौकर रखा हुआ है। वह उसकी हर जरूरत का ध्यान रखता है? विनोबा जी ने हंसकर कहा—'तो भाई, घोड़ा तो उस नौकर को ही पीठ पर बैठाएगा। हां, यदि तुम भी उसे प्यार दुलार दोगे, खाना-पीना दोगे तो वह तुम्हारा बन जाएगा।'

उस आदमी को विनोबा जी की बात में वजन नजर आया। उनके कहे अनुसार घोड़े को प्यार प्रेम स्नेह से पुचकारा, दुलारा, सेवा की। कुल आठ दिन बाद उसी घोड़े पर बैठकर विनोबा जी के पास आया। कहने लगा—आपका फार्मूला काम आ गया। अब मुझे पता चल गया कि सच्चे प्रेम, अपनत्व और सेवा को मनुष्य ही नहीं, पशु भी पहचान लेते हैं और अपने बन जाते हैं। मानव के प्रेम से पशु का मन, पशु के प्रेम से मानव मन प्रभावित होता है। प्रेम मानव मन से बढ़ते-2 अब पशु जगत् तक तो पहुंच चुका है। अब तो कुछ ऐसे भी प्रयोग वैज्ञानिकों ने किए हैं और उनका ब्यौरा भी प्रकाशित करवाया है जिनमें साबित किया है कि पेड़-पौधे भी मनुष्य के प्रेम को समझते हैं तथा बदले में प्रेम देते भी हैं। वे पानी से सींचने वाले माली का सान्निध्य पाकर प्रसन्न होते है और कुल्हाड़ी लेकर काटने आए इंसान के पास आते ही कुम्हला जाते हैं, मुरझा जाते हैं। भले ही वैज्ञानिकों की इस शोध को हम शत-प्रतिशत स्वीकार न करें पर यह बात उभर कर आ रही है कि प्रेम मानव मन की सबसे बड़ी खुराक है।

यदि आप मनुष्य का तन वश में करना चाहो तो उसे जेल में डाल सकते हो लेकिन क्या मनुष्य वश में आ गया। मनुष्य के मन को वश में करना है तो उसके मन को समझना-समझाना होगा। मन को समझाने के लिए ताकत जबरदस्ती नहीं चलेगी। उसके लिए चाहिए सद्भावना।

एक बहुत पुरानी कहानी है। सेठ की पत्नी छोटे से बालक को छोड़कर स्वर्ग सिधार गई। सेठ ने सोचा—इस बालक की रक्षा कौन कर सकता है। यदि मैं पुनर्विवाह कर लूं तो जो नारी आएगी पता नहीं वह इस बालक को अपना माने अथवा न माने। यदि कोई धायमाता मिल जाए तो बच्चे की देखभाल हो जाएगी। सौभाग्य से एक गरीब मगर धर्मपरायण, स्नेहमयी, संस्कारवती महिला मिल गई और सेठ ने उसको बालक की धायमाता के रूप में घर पर रख लिया। उस नारी ने भी उस घर को अपना घर, घर की इज्जत को अपनी इज्जत, बालक को अपना बालक माना। लड़का बड़ा होने लगा। उसने अपनी मां तो देखी नहीं थी मगर उस धायमाता को ही वह अपनी मां मानकर उसका सम्मान करता, उसके चरण छूता। सेठ को अपने पुत्र के ये संस्कार देखकर बड़ी प्रसन्नता होती। लड़का पढ़-लिखकर स्याना हो गया। कारोबार की समझ आने लगी। धीरे-2 सेठ ने व्यापार का अधिकतर भार उसी के हवाले कर दिया। आप धर्मध्यान करता रहता, हां घर व्यापार में यथा समय हाथ भी बंटा देता। समय आने पर एक अच्छे परिवार की सुयोग्य कन्या से पुत्र का विवाह भी कर दिया। संयोग ऐसा बना कि विवाह के तुरंत बाद सेठ के विदेशी ठिकाने पर काम-धंधे में मंदा आ गया। वहां के कारिन्दे घपला करने लगे, ऐसी सूचना सेठ को मिली। सेठ ने सारी बात बेटे से कही और ये भी जिक्र किया कि मैं कुछ समय के लिए विदेश वाली फर्म को संभाल आता हूं, तू यहां की देखभाल कर। लड़का कहने लगा—पिता जी, आपकी उम्र बाहर जाने की नहीं है। वहां खाने-पीने की दिक्कत भी आ सकती है। फिर आपका जीवन निवृत्तिपरक हो चुका है उसमें अंतराय पड़ेगी। बाहर मैं चला जाता हूं। साल-सवा साल लगेगा। मैं कोशिश करके वहां की गद्दी को ठीक कर आऊंगा। पिता कहने लगा—बेटा, नई-2 शादी हुई है। बहू घर में है। उसका मन तेरे बिना कैसे लगेगा? वह कहने लगा—ऐसी कोई बात नहीं है। वह बहुत गंभीर और समझदार नारी है। हर ऊंच-नीच को समझती है। वह मन लगा लेगी। पिता ने फिर कहा—ठीक है, पहले उससे पूछ

ले। वो हां करे तो तू चला जा, नहीं तो मैं चला जाऊंगा। सेठ के पुत्र ने अपनी पत्नी से जिक्र किया कि व्यापार के सिलसिले में मुझे विदेश जाना है, तुझे कोई ऐतराज तो नहीं। मुझे वहां साल भर तो लग ही जाएगा, ज्यादा लग जाए ये भी संभव है। पिता जी ने सब कुछ तेरी इच्छा पर छोड़ दिया है। यदि तू रजामंद है तो चला जाऊंगा वर्ना पिता जी को जाना पड़ेगा। बड़ी विनयवान् थी वह कुल वधू। कहने लगी—पिता जी धर्मध्यान में लगे रहते हैं। उन्हें इस उम्र में कष्ट देने का क्या तुक है। आप खुशी से जाइए। जिस तरह उर्मिला ने लक्ष्मण जी को भैया राम जी की सेवा में वन के लिए भेज दिया था उसी प्रकार उस देवी ने अपने पतिदेव को विदेश जाने की प्रेरणा दी। समस्या का समाधान हो गया। सेठ का बेटा विदेश जाने से पूर्व अपनी पत्नी से एक बात कहता है कि 'आप एक चीज का ध्यान रखना कि पिता जी को भोजन खिलाकर खुद खाना। इससे पूजनीय पिता जी का सम्मान रहेगा और उनका आशीर्वाद मिलता रहेगा'। कुलवधू ने कहा—स्वामिन्, आपका निर्देश मेरे लिए आज्ञा से भी ज्यादा मान्य रहेगा। मैं पिता जी के भोजन के बाद ही मुंह में अन्न पानी डालूंगी। युवक काफी निश्चिन्त हो गया। फिर वह अपनी धायमाता के पास गया और अपने प्रस्थान की चर्चा की। साथ ही एक निवेदन किया कि मैं आपको मां के बराबर मानता हूं। ये मेरी पत्नी आपकी ही पुत्रवधू है। इस घर की हर चीज पर आपका अधिकार है। इस समय मेरी विनति है कि मेरी पत्नी अभी छोटी आयु की है। ये आपसे कुछ भी काम करवाए, उस काम को करने से पूर्व पिता जी को जरूर कह देना। पिता जी की जानकारी के बिना कोई काम न हो। ऐसी आपसे प्रार्थना है। धायमाता बोली—वत्स, पूरा ध्यान रखूंगी। सेठ का लड़का निश्चिन्त होकर विदेश यात्रा के लिए प्रस्थित हो गया। वहां काम काफी उलझा हुआ था। उसे समझना मुश्किल था। फिर सुलझाना, समेटना, रास्ते पर लाना तो और कितना मुश्किल होगा। समय पर समय बढ़ता गया। इधर वह युवा नारी दिन भर घर में अकेली रहने को विवश हो गई। अकेली धायमाता से क्या बात

करती। नई-2 होने से कोई सखी सहेली भी नहीं थी। पति के बिना घर से बाहर किसके साथ जाती? अंदर रहकर ही वक्त काटने लगी। लेकिन मन और तन दोनों बागी होने लगे। तन का तूफान तन्हाई में मन को मजबूर करने लगा। जवानी की हसीन कल्पनाएं मन को उड़ने की राह बताने लगी। न जाने कैसे-2 गीत कहीं से निकलकर होठों पर उतरने लगे। 'मेहतरानी हो कि रानी मुस्कुराएगी जरूर, कोई आलम हो जवानी गुनगुनाएगी जरूर।'

वह कभी-2 सोच लेती कि इस मन को कैसे समझाऊं? अभी अपरिपक्व आयु थी। न विधि जानती, न उपाय। एक दिन अपनी धायमाता से बोली—अम्मा जी, हमारा रसोइया बूढ़ा हो गया है। इसे अच्छी तरह खाना बनाना नहीं आता। कभी सब्जी में नमक ज्यादा डाल देता है तो कभी डालना भूल जाता है। वैसे भी साफ-सुथरा कम रहता है। ऐसा करो किसी शिक्षित सुंदर युवक की तलाश कर लो। उसको अपने घर का रसोइया रख लेंगे तथा इसकी छुट्टी कर देंगे। धायमाता ने बिना किसी जिरह बहस के उसको कह दिया—ठीक है बहू, ऐसा ही होगा। क्योंकि वह वचनबद्ध थी कि हर काम सेठ की अनुमति से ही होगा। इसलिए वह सेठ जी के पास गई और बहू की मांग सेठ जी को बता दी। सेठ जी सुनकर गंभीर हो गए। फिर भी वक्त की नजाकत को समझते हुए धायमाता से कहा—'बहू से कह देना कि मैं अच्छे रसोइए की तलाश कर रही हूं। समय लगेगा। पर भावना अवश्य पूरी होगी। दूसरी बात, बहू से ये भी कह देना कि आज सेठ जी तो उपवास करेंगे। उसे जो भोजन बनवाना हो वह रसोइए से बनवा ले।' सेठ जी ने बहू की चित्तवृत्ति का परिवर्तन करना था। लेकिन वह डांट-डपटकर नहीं, बुरा भला कहकर नहीं, अपितु शांत भाव और शांत व्यवहार से करना था। उसे पता था कि बहू का मन कुछ काल के लिए बेचैन हुआ है। समय पाकर अपने आप संभल जाएगा। फिर भी तपस्या का सहयोग मिल जाए तो मनोविकार शीघ्र विलीन हो जाएंगे। धायमाता ने जाकर बहू से कह दिया—बेटी, तेरी डिमांड के मुताबिक किसी योग्य रसोइए

की खोज चालू कर दी है। दो-तीन दिन में इंतजाम हो जाएगा। हां, उधर सेठ जी ने खबर भिजवाई है कि आज वे उपवास करेंगे। अतः उनके लिए कोई चीज नहीं बनवानी। तुझे जो पंसद हो वह खुद बना लेना या रसोइए से कहकर बनवा लेना। ये कहकर धायमाता तो काम में व्यस्त हो गई। कुलवधू जिसे उसके पति कह गए थे कि पिता जी को भोजन करवा करके ही भोजन करना है, असमंजस में पड़ गई। भूखा रहने का अभ्यास नहीं था। पर ससुर जी खाना ना खाएं तो खुद खाने को भी मन तैयार नहीं था। फिर भी संकल्प कर लिया, कुछ भी हो पर खाना नहीं खाऊंगी।

और उसने दिन भर भोजन नहीं किया। शरीर में कमजोरी तो महसूस हुई पर ज्यादा दिक्कत नहीं आई। रात को शुरू-2 में जोर लगा फिर नींद आ गई। तो कमजोरी की Feeling भी कम हो गई। शरीर तो तरोताजा हो ही गया। मन भी कुछ Relaxed सा था। विचारों का वेग कुछ कम सा होने लगा था। सोच रही थी, पहले कभी उपवास नहीं किया था। पहली बार मौका मिला है, अच्छा है। अब तो दिन निकलने पर पारणा हो ही जाएगा। एक तरफ तपस्या की पूर्ति की खुशी थी, दूसरी ओर पारणे की संभावना से अंग-2 पुलकित हो रहा था। खाने के Items को लेकर मन नई-2 कल्पनाएं बुन रहा था। दिन निकलने वाला था, तभी सेठ जी का समाचार आया कि 'मैं तो आज बेला करूंगा। बहू जी, आज पारणा जरूर कर लें। मुझे तो पुराना अभ्यास है। करता रहता हूं, बहू का पहला व्रत है उसे पारणा कर ही लेना चाहिए।' सेठ जी ने खबर भिजवा दी मगर बहू को झटका सा लगा। अच्छे-2 पकवानों की कल्पना पर पानी फिर गया। पर मन में एक विश्वास सा जग गया कि यदि बड़ी उम्र में मेरे ससुर जी तपस्या कर सकते हैं तो मुझे क्या होने वाला है। मेरी तो युवावस्था है। भोजन न भी करूंगी तो क्या बिगड़ता है और शरीर का क्या है मन मजबूत रहा तो शरीर भी ठीक रहेगा। पूरा दिन कल से बेहतर बीता। मन भी शांत रहा। अंदर ही अदंर सफाई

होने लगी। कई दिनों से जो आकर्षण तीव्र हो रहा था उसमें काफी मंदता आ गई। दिल करने लगा कुछ प्रभु भक्ति के भजन गाऊं। अकेले में बैठकर कुछ देर भजन गाती रही, बड़ा अच्छा लगा। रात उतरी तो नींद पहले से अच्छी आई। अन्तर्मन उल्लसित था। एक गहन संतुष्टि का अनुभव हो रहा था। दो दिन तक तपस्या करना एक उपलब्धि सी लग रही थी। उस बात का एक सात्विक गर्व मन में उतर रहा था। पारणे की इच्छा थी पर इतनी बेताबी और बेसब्री नहीं थी। तीसरे दिन सेठ जी की ओर से कहलावा आया कि मैं आज भी तपस्या करूंगा, बहू अपनी तबीयत देख ले। पारणा कर ले तो अच्छा है। बहू को बड़ा अच्छा लगा कि मैं तेला करूंगी। बल्कि ये भी ख्याल आया—पिता जी पारणा कर लेते तो अच्छा था। मैं तो तेला आराम से कर सकती हूं पर उनकी तो उम्र ढल रही है वो कैसे करेंगे? मगर धन्य हैं मेरे ससुर जी जिनमें कितनी सहनशीलता है। आज तीसरा दिन था। तपस्या ने तन को कृश तो कर दिया था पर मन का धरातल उज्ज्वलतर निर्मलतर होने लगा था। गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है—**'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः, रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।'** आहार छोड़ने से मन के विषय भोग काफी हद तक वापस लौट जाते हैं। उत्तराध्ययन में इसी बात को उपमा देकर स्पष्ट किया है। जैसे दवाई लेने से रोग के कीटाणु भाग जाते हैं ऐसे ही आहार आदि का नियंत्रण करने से विषय विकार भी भाग जाते हैं। इससे विपरीत स्वादिष्ट भोजन करने वाले व्यक्ति के मन में विकार ऐसे आकर डेरा जमा लेते हैं जैसे स्वादिष्ट फल वाले पेड़ पर पक्षी आकर बैठ जाते हैं तथा जैसे अधिक ईंधन वाले जंगल में लगी आग ठंडी नहीं हो पाती ऐसे ही अधिक भोजन करने वाले व्यक्ति का कामराग शांत नहीं होता बल्कि भड़कता रहता है।

सेठ की पुत्रवधू ने तीसरे दिन की तपस्या में अपने अन्तर्मन के परिवर्तन को स्वयं ही लक्षित कर लिया। वह सोचने लगी—मेरे मन में ऐसा बुरा भाव क्यों पैदा हुआ। खैर, अभी कुछ भी नहीं बिगड़ा। मैं

अपनी धायमाता को कह दूंगी। शाम को जब धायमाता उसकी साता पूछने आई तो उसने अपनी तरफ से कह दिया कि—माता जी, तीन दिन पहले जो मैंने नए रसोइए के लिए बोला था, उसके लिए अब प्रयास मत करना। ये फिर भी पुराना है। ये सबके Taste को जानता पहचानता है, बोलचाल का मीठा है, सबकी इज्जत करता है। अभी नए की जरूरत नहीं है। यदि बदलना भी होगा तो ससुर जी खुद बदल देंगे या वे आएंगे, उन्हें जैसा ठीक लगेगा कर लेंगे।' धायमाता निश्चिन्त हुई।

उधर सेठ जी की निगाहें घर की ओर ही लगी हुई थी। ऊपर से तो घर से दूर थे लेकिन मन तो उनका घर पर ही पड़ा रहता था। शाम को धायमाता सेठ जी के पास गई। सेठ जी ने बहू की मनोदशा के बारे में पूछा तो उसने बताया कि आज वह काफी हल्की लग रही है तथा उसने मुझे रसोइया बदलने से भी मना किया है। सेठ जी ने गहरी संतोष की सांस ली। फिर कह दिया कि कल पारणे का भाव है। उसका लक्ष्य पूरा हो गया था। वह जानता था कि कभी-2 तपस्या से मन का ज्वार थम जाता है।

तन मन का गहरा रिश्ता है इक साधे दूजा सधता है।
तन सुविधाओं का भोगी हो मन पीछे-2 चलता है ॥

अगले रोज दोनों का पारणा हो गया। उसके बाद तो पुत्रवधू का मानस-निश्चय पक्का बना रहा। वो एक ज्वार था, वक्त बीता और उतर गया। सेठ को भी पता था कि मन से ज्यादा संघर्ष नहीं करना चाहिए। संघर्ष से मन कभी-2 प्रबल हो जाता है। उसे निर्बल बनाने के लिए कभी-2 उपेक्षा भाव भी आवश्यक होता है। सेठ जी का कार्य सिद्ध हो गया। कुछ अर्सा बीता और सेठ का लड़का भी परदेश से लौट आया। घर में खुशी छा गई। उसने पिता जी, धायमाता से घर विषयक बातें पूछी तो पूर्ण संतुष्टि प्रकट की। फिर अपनी पत्नी ने

अपनी आलोचना भी की तथा अपने ससुर की गंभीरता, शालीनता, दूरदर्शिता तथा महानता की खुलकर स्तुति भी की। उसकी भावना को एक भजन के माध्यम से प्रस्तुत करूंगा–

लाज मेरी रही सुरक्षित देव ॥

ससुर बने मेरे शिव शंकर स्वयं किया विषपान,
मैं विकारों में उलझ गई थी रक्खा मेरा ध्यान,
दुर्लभ ऐसे ससुर महादेव ॥

आप क्षमा करना स्वामी जी, पाप दिया है खोल,
धायमाता सचमुच माता रही पूरी अडोल,
दमन की (शमन की) महिमा कहें गुरुदेव ॥

श्रेष्ठिपुत्र ने कहा–देवी! आप सरीखी धर्म सहायिका का मिलना मैं अपना सौभाग्य समझता हूं। तूने मुझे उस वक्त विदेश जाने की अनुमति दी जिस समय कोई भी नवोढा पत्नी अपने पति को नहीं दे सकती। दूसरी बात, तूने मेरी बात शत-प्रतिशत पुगाई। पूज्य पिता जी ने आहार नहीं किया तो तूने तीन दिन आहार नहीं लिया, ये तेरी बलिहारी है। वर्ना मैं दूर बैठा क्या कर सकता था। तू महान् है। तेरा अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण है। मैं तुझे नमन करता हूं।

कहने का भाव ये है कि मानव जीवन में सबसे बड़ा Role मन का है। जो मन को संभाल लेता है उसका जीवन धन्य हो जाता है। इस प्रकार जो मन को समझ लेंगे, समझा लेंगे उनका यहां भी कल्याण होगा आगे भी कल्याण होगा।

17. जीवन लक्ष्य-दोष निवारण

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी–

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू गिण्हाहि साहू गुण मुंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पग मप्पएण जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥[1]

गुणों की मौजूदगी हो तो साधुता है, अगुणों की मौजूदगी हो तो असाधुता है। इसलिए हे साधक, अगुणों को छोड़ गुणों को अर्जित करने का प्रयास कर।

स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाषा के अनुसार शरीर में बनने वाले दोषों का सही विधि से बाहर निकल जाना नीरोगता है। उन दोषों का रुके रहना रोग और बीमारी है। अध्यात्म जगत में चार महत्त्वपूर्ण तत्त्व है–इंद्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा। इन चारों में जो-2 दोष उत्पन्न होते हैं यदि वे निकल जाएं तो समझो आत्मा स्वस्थ है। जो प्रक्रिया दोषों को बाहर निकालती है वह प्रक्रिया है सरलता की तथा जो प्रक्रिया उत्पन्न हुए दोषों को बाहर निकलने से रोकती है उस समग्र प्रक्रिया को कपट कहते हैं। पुराने जमाने में वैद्यों और आज के डॉक्टरों में एक Basic ïd fferen e ये है कि पुराने वैद्य शरीर के दोषों को बाहर निकालते थे जबकि आजकल के डॉक्टर शरीर के दोषों को दबाते हैं। अच्छा वैद्य

---

1 दशवैकालिक 9 अध्ययन 3 उद्देशक 11 गाथा

वह है जो या तो दोष उत्पन्न ही न होने दे, यदि कोई दोष उत्पन्न हो भी जाता है तो उस दोष को जल्दी बाहर निकाल देता है।

आदि शंकराचार्य ने जीवन सौंदर्य की चर्चा करते हुए लिखा हैं **'किं जीवनं?' दोषं विवर्जितं यत्'**—श्रेष्ठ जीवन वह है जो दोषों से खाली हो चुका है। लेकिन समस्या ये है कि हमें दोष छिपाने वाले अच्छे लगते हैं, दोष निकालने वाले शत्रु नजर आते हैं। चाहे हमारा व्यक्तिगत जीवन हो, चाहे पारिवारिक, सामाजिक या सार्वजनिक जीवन हो। हमें वह आदमी सुहाता ही नहीं जो दोषों को निकालने की चेष्टा करता हो।

बहकाने वाले आपके सब यार हो गए,
समझाने वाले मुफ्त में गुनाहगार हो गए ॥

एक सेठ के पास बड़ा पुराना तोता था। दोनों में एक-दूसरे के प्रति बहुत प्यार था। सेठ सुबह उठकर सबसे पहले उसके पास जाता था। उसे लगता था कि तोते का दर्शन मेरे लिए शुभ है। तोते को वह 'पर्वते' कहकर पुकारता तो तोता भी उसका स्वागत करने लगता। सेठ का ये नित्यक्रम था कि तोते के पिंजरे के पास जाता और कहता—**'पढ़ो, पर्वते, चित्र कोटि दूध रोटी। चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर, तुलसीदास चन्दन घिसै तिलक देत रघुबीर।'** तोता सेठ के एक-2 शब्द का हू-ब-हू उच्चारण करता। सेठ खुश हो जाता। फिर सेठ उसे अपने हाथों से दूध और रोटी खिलाता। इस तरह सेठ और तोते का मधुर संबंध चल रहा था। वहीं पास के दूसरे सेठ ने बिल्ली पाल रखी थी। वह बिल्ली इस फिराक में थी कि मैं किसी तरह इस मोटे तोते को खाऊं। लेकिन पिंजरे में बैठे तोते पर उसका दांव नहीं लग सकता था। एक बार बिल्ली को एकांत मिल गया और वह तोते के पिंजरे के पास आकर तोते से मीठी-2 बातें करने लगी। उसकी हमदर्द बनते हुए बोली—'पर्वते, तुम कैद में पड़े हो। इस बात का तुझे ही नहीं मुझे भी बड़ा दुःख है। कैद तो उन्हें मिलती है जो चोरी या कत्ल जैसे जुर्म

करते हैं। तुमने ऐसा क्या अपराध किया जो इस छोटे से पिंजरे में कैद हो। अब तो तुम धीरे-2 उड़ना भी भूल जाओगे। क्या तुम आजाद नहीं होना चाहते?' तोते को लगा कि इस बिल्ली से ज्यादा हितैषी प्राणी संसार में और कोई नहीं हो सकता। कहने लगा—'मौसी, पहली दफा किसी ने मेरी पीड़ा को पहचाना है। मेरे साथी गगन में उड़ते हैं, वन-2 में घूमते हैं, सुन्दर-2 फल खाते हैं और इधर मैं अकेला बासी रोटी, बासी दाने खाकर जीवन बसर कर रहा हूं। करूं भी तो क्या करूं। फंस गया हूं, पापी पेट तो भरना ही पड़ेगा। निकलने का मन तो बहुत करता है पर करूं भी तो क्या करूं?' बिल्ली मौसी बोली—भानजे, मुक्त होने का उपाय तो मैं बता दूं। तू सेठ का सिखाया पाठ बोलना छोड़ दे और उल्लू की बोली बोलना सीख ले। तू शर्तिया आजाद हो जाएगा।' तोता कहने लगा—मैं सेठ की बोली बोलना तो छोड़ दूंगा, पर उल्लू की बोली कैसे बोलूंगा। मैंने तो उसकी बोली सीखी नहीं है। बिल्ली मौसी ने कहा—उसका इंतजाम मैं कर दूंगी। तोता बिल्ली के झांसे में आ गया और उसकी तरकीब के अनुसार चलने को तैयार हो गया। बिल्ली अपना उल्लू सीधा करने उल्लू के पास पहुंच गई। कहने लगी—दादा, पड़ौसी सेठ ने एक तोता पाल रखा है। सेठ की तरह ही मोटा ताजा है। उसका मांस खाने की इच्छा है? उल्लू बोला—'जल्दी बता, कैसे बात बनेगी?' बिल्ली ने कहा—हम और तुम दोनों मिलकर एक काम करेंगे। तू उसे अपनी बोली सिखा दे और जब मैं बुलाऊं तू सेठ के मकान की मुंडेर पर आकर बैठ जाना फिर देखना क्या होता है। उल्लू ने एकांत क्षणों में आकर तोते को अपनी बोली सिखा दी। दो-चार दिन बाद ही तोते के तेवर बदल गए। सेठ आया तो तोते ने बोलना शुरू कर दिया—घू-घू-घू। सेठ को बड़ा बुरा लगा। ये अपशकुन क्या हो गया। आज तो दुकान पर नुकसान हो सकता है। फिर उसे प्यार से कहा—'पर्वते, बोलो चित्र कोटि दूध रोटी। मगर तोता तो बिल्ली के इशारे पर चल रहा था। वह तो अब भी कर रहा था—'घू-घू-घू।' तभी सेठानी भी दौड़ी आई। 'सेठ जी, इस तोते की आवाज सुनकर हमारे घर

पर उल्लू आकर बैठ गया है, या तो इसकी घू-घू बन्द करवाओ या इसे घर से बाहर उड़ा दो। जब सेठ का सत्प्रयास सफल नहीं हुआ तो उसने तोते को पिंजरा खोलकर उसे उड़ने के लिए बाहर छोड़ दिया। तोते ने भी उड़ने की कोशिश की पर उड़ न सका क्योंकि लंबे अर्से से पिंजरे में रहकर उड़ना भूल चुका था। तभी उसकी तरफ बिल्ली झपटी। घबराया तोता कहने लगा—'मौसी ये क्या कर रही हो?' बिल्ली बोली—'पर्वते, तू तो मेरी खुराक है। उधर से उल्लू ने भी उस पर झपटा मारा। बेचारे के प्राण पखेरू उड़ गए। बेचारा मरते-2 बोल रहा था—चित्रकोटि दूध रोटी। पर अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

'निर्वाणदीपे किमु तैलदानम्' दीपक बुझ चुका हो फिर उसमें तेल डालने का क्या लाभ है? जब तक दीपक की लौ बाकी थी तब तक तो तेल डाल दो तो दीया रात भर रोशनी देता भी रहता मगर अब तो अंधेरा ही अंधेरा है। दरअसल, इस जीवात्मा को वक्त पर विवेक उत्पन्न नहीं होता। जब तक संभलने की संभावना होती है यदि तब तक अच्छे पुरुषों की संगति रखे, उनकी हित शिक्षा माने तो उसका उद्धार संभव है।

धर्म के क्षेत्र में जीवात्मा को हितमार्ग पर चलाने वाला, पग-2 पर संभालने वाला, समस्याओं को समाहित करने वाला तथा आपद्ग्रस्त को निरापद् बनाने वाला व्यक्ति गुरु कहलाता है। वह हमारे दोषों का दर्शन भी करवाता है। दोष निराकरण के उपाय भी सुझाता है। वह हमारी चेतना में उत्साह भरकर दोषों से लड़ने की हिम्मत भी देता है, दोषों के प्रहारों से परास्त होकर पराजय स्वीकृति के लिए तैयार हमारे चित्त को झिंझोड़ कर लड़ने के लिए विवश भी करता है। जिस प्रकार मेघ मुनि को पलायन करते हुए भगवान् महावीर ने संभाला था, युद्ध से विमुख अर्जुन को श्री कृष्ण जी ने डांटा और धमकाया था, ऐसे ही हर जिम्मेदार और समझदार गुरु अपने शिष्य के जीवन निर्माण में अपनी पूरी शक्ति होम देता है। एक बार देवताओं में चर्चा चली कि विश्व

में सबसे बड़ा कौन है? सभी देवता अपना-2 पक्ष प्रस्तुत करने लगे। अंत में सबने सर्वसम्मति से निर्णय किया कि गुरु विश्व में सबसे बड़ा होता है। देवताओं के उस डायलॉग को एक कवि ने कविता के रूप में प्रस्तुत किया है।

कोई कहता है पृथ्वी बड़ी, जिन खलक सिर पै पाई हुई है।
पृथ्वी नहीं बड़ी, है शेष बड़ा, जिन पृथ्वी ऊपर उठाई हुई है।
शेष बड़ा नहीं है महेश बड़ा, जिन शेष की माला बनाई हुई है।
महेश भी नहीं बड़ा है कैलाश बड़ा, जहां शिव ने धूनि रमाई हुई है।
कैलाश से बड़ा तो है रावण बड़ा, उसने जोर आजमाई हुई है।
रावण से बड़ा है वह बाली, जहां रावण ने हार खाई हुई है।
बाली नहीं बड़ा है राम बड़े, जहां बाली की मृत्यु आई हुई है।
राम नहीं बड़े है नाम बड़ा, जिनने राम से कार कराई हुई है।
नाम नहीं बड़ा है भक्त बड़ा, जिन्ह नाम से प्रीत लगाई हुई है।
भक्त नहीं बड़ा है गुरु बड़े, जिन्ह से नाम की दीक्षा पाई हुई है॥

जैसा कि मैंने पहले कहा था कि गुरु भिन्न-2 ढंग से शिष्य का हित साधता है। वह शिष्य के भीतर कभी बुझी ज्योति को प्रज्वलित करता है, कभी जलती हुई ज्योति पर आए गुल को झाड़ देता है। कभी वह दीपक में स्नेह का दान करता है तो कभी बत्ती की Settig करता है। किसी एक ढंग से, एक विधि से ही वह शिष्य को उपकृत नहीं करता, उसके पास हजारों विधियां है। कोई विधि अंधकार में काम करती है तो कोई प्रकाश में काम करती है। कभी-2 गुरु कुछ भी नहीं करता, कुछ भी नहीं बोलता, पर फिर भी उपकार करता जाता है। उसकी उपस्थिति ही एक चमत्कार होती है।

सद्गुरु वायजीद अपनी झोंपड़ी के द्वार पर बैठे थे। एक युवक आया। पूछने लगा—'धर्म क्या है?' साधना क्या है और मुक्ति का मार्ग क्या है?' सद्गुरु ने कहा—क्या करोगे जानकर? युवक ने कहा—मैं बंधन से मुक्त होना चाहता हूं।' सद्गुरु की हंसी रोके नहीं रुकी।

उन्होंने कहा—'तुम मुक्त होना चाहते हो? पर यह तो बताओ कि तुम्हें किसने बांधा है? बंधन किसी और का तो है नहीं, अपने आपका है। तुम्हारे भीतर के आकाश को कौन अवरुद्ध कर सकता है। तुम मुक्त हो, स्वयं को मुक्त महसूस करो। अतिमुक्त को बंधन कैसा? गुरु के संकेत से, उपदेश से, उपस्थिति से शिष्य की अनुभूति क्षमता तत्काल बढ़ गई और उस अवस्था का अनुभव करने लगा जिस अवस्था को वह स्वयं से अति दूर मानता आ रहा था। वह मुक्त था, अब मुक्तता अनुभव गम्य हो गई।

गुरु किस प्रकार से चट्टान में से हीरे को बाहर निकाल सकते हैं और किस प्रकार खराद पर चढ़ाकर उसे तराश देते हैं। इसका जीता जागता उदाहरण हमारे आदि पुरुष श्री मयाराम जी म. का जीवन है। बड़ौदा के जाट परिवार में जन्म लेकर जैन जगत् के विस्तृत गगन में सूर्य की भांति जगमगाए थे। उनकी प्रतिभा की पहली पहचान वहां, बड़ौदा में विराजमान श्री गंगाराम जी, श्री रतीराम जी म. ने की थी। उन्होंने श्री मयारामजी को नवकार मंत्र, वंदना, सामायिक के पाठ सिखाते-2 पांच आगम कंठस्थ करवा दिए तो सैंकड़ों भजन, स्तवन, सज्झाय याद करवा दी। कितने ही थोकड़ों का अभ्यास करवा दिया। तीव्र वैराग्य की भावना भर दी। उन्होंने तो एक चिंगारी जलाई थी जो बढ़ते-2 महा ज्योति बन गई थी। श्री मयाराम जी ने अपने गुरुओं को सम्मान दिया तो सारे जमाने ने श्री मयाराम जी म. को सम्मान दिया। उनको अपने हृदय का सम्मान देने वालों की सूची बहुत लंबी है। कुछ महापुरुषों ने उनके विषय में अपने जो-2 उद्‌गार व्यक्त किए थे उनकी एक बानगी आपको दिखा रहा हूं।

आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म. ने कहा है—'श्री मयाराम जी म. ने अपने महान् संयम की अमिट छाप समस्त साधु समाज पर अंकित की है। श्री अमोलक ऋषि जी महाराज ने अपने ग्रंथ 'शास्त्रोद्धार मीमांसा' में श्री मयाराज जी म. को 22 आगम कंठस्थ करने वाला लिखा है।

श्री कांशीराम जी जो पंजाब के प्रतापी आचार्य थे, जिनको दीक्षापाठ भी श्री मयाराम जी म. ने पढ़ाया था। उन्होंने कहा था—'श्री मयाराम जी म. का पवित्र संयम समस्त संघ के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

आगमों के महान् अध्येता, अनुवादकर्ता आ. श्री आत्मारामजी म. ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था—'श्री मयाराम जी म. पर मैं क्या कहूं? वे बेमिसाल संयमी थे।' शतावधानी श्री रत्नचंद जी म. ने कहा था—'इसमें कोई संदेह नहीं है कि श्री मयारामजी म. के शुद्ध संयम ने श्रमण संस्कृति के गौरव को बढ़ाया था।

आगरा वाले श्री लाल चंद्र जी म. की भावना। उनके शब्दों में—'मैं श्री मयारामजी म. को गणधर मानता हूं।' व्याख्यान वाचस्पति गुरुदेव श्री मदन लाल जी म., योगिराज श्री रामजीलाल जी म., पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी म. ये त्रिवेणी श्री मयाराज जी म. के जीवन संदेश के ध्वजवाहक प्रहरी रहे थे। एक-2 लाईन में तीनों युग पुरुषों के भाव है 'श्री मयाराम जी म. सूर्य के समान तेजस्वी व चंद्र के समान शीतल थे।' 'श्री मयाराम जी म. के प्रचण्ड संयम से हमारा मस्तक ऊंचा है।'

हर कंठ से जिनके स्तुति गीत गूंजे थे। गुरु गंगाराम रतीराम की टकसाल से जो निकले थे। गुरु नीलोपत तथा गुरु हरनाम दास की यूनीवर्सिटी में जिनको बड़ा सर्टिफिकेट मिला था। ऐसे श्री मयारामजी म. के सैंकड़ों जीवन प्रसंग मस्तिष्क में कौंधते रहते हैं पर उनके अंतिम चातुर्मास बड़ौदा से जुड़ी कुछ बातें बताना चाहता हूं।

संवत् 1968 (सन् 1911) में बड़ौदा चातुर्मास के लिए जब उनका कोथ गांव से प्रवेश हुआ तब तीन कोस का रास्ता जनता से भरा हुआ था। उस समारोह में न कोई झण्डी थी न कोई Motto था। ये सब तो आधुनिक युग के आडम्बर हैं।

लिहाजा, गांव मे पहुंचकर चौपाल के चबूतरे पर खड़े होकर उन्होंने उद्‌बोधन दिया था कि प्रवचन दोपहर को एक बजे से तीन बजे तक

होगा। मैं यहां आया हूं, यहां का रहने वाला हूं। मुझे अपने घरों के झगड़े न सुनाएं। सेवा करते रहोगे तो सब झगड़े अर्थात् उलझनें, ठीक हो जाएंगे।'

गांव में रहकर वे पूरी तरह गांव के माहौल में ढल गए। आहार एक बार ही आता था। हां, शाम को कढौनी का दूध ले आते थे। उस जमाने में घड़ी न होने से धूप के आधार पर समय का ज्ञान किया करते थे। चौपाल में पट्टा एक ही था। दो संत पट्टे पर बैठते तो दो पौड़ियों में बैठ जाते। बाहर घूमने के लिए दो किलोमीटर तक जाते थे। चौमासी के दिन ही पौषधों की अपार रौनक हो गई। दस मील तक के लोग प्रवचन सुनने आते थे। बड़ौदा के जाटों में चहल गोत के दो पान्ने थे या कहो दो आल थी—छोटी आल, बड़ी आल। बड़ी आल तो लगभग सारी ही जैनधर्म मानने लगी थी। छोटी आल वाले सभी जैन नहीं बने पर आते सभी थे।

उनके प्रवचन का जादू किस तरह सिर चढ़ कर बोलता था। एक घटना है—गांव का बच्चा-2 कथा में हाजिर होता था। जैसे ही उनकी नवकार मंत्र की धुन गलियों में गूंजती, लोग सब काम धाम भूलकर प्रवचन के लिए दौड़ पड़ते थे। एक जाटनी दूध का काम कर रही थी, आवाज कानों में टकराई और सुध-बुध भूल गई। तुरंत उनके समवसरण में पहुच गई। पीछे कुत्ते आदि आए और उन्होंने दूध के बर्तन उलट-पुलट दिए। दूध खिंड गया। जाटनी वापस आई, तभी जाट भी आ पहुंचा। उसने पूछा—ये दूध कैसे खिंड गया? जाटनी हंसकर बोली—दूध तो मयाराम जी म. ने खिंडाया है। फिर उसने समझाया कि जब उनकी कथा शुरू हो जाती है, फिर मुझे घर-बार, दीन-दौलत का कुछ ध्यान नहीं रहता फिर चाहे घर बसो, चाहे उजड़ो मेरी बला से। ऐसा था गौरव श्री मयाराम जी म. का।

श्री मयाराम जी म. के जीवन को जिस भी कोण से देखो उसी कोण से दिव्य और भव्य नजर आता है। उनके जीवन के किसी भी

पहलू में कोई दोष प्रतीत ही नहीं होता। इतनी श्रद्धेय आत्मा थी कि मन उन पर फिदा होता रहता है। मुझे कुछ महापुरुषों की चर्या ने बहुत प्रभावित किया है। उनमें पूज्य श्री मयाराम जी म. तो प्रभावित करने वाले थे ही। महात्मा गांधी ने भी मुझे, मेरे स्वभाव और मेरे व्यवहार को प्रभावित किया है। दिल्ली में 9 वर्ष स्थिरवास के दौरान मुझे गांधी साहित्य पढ़ने का शौक भी बहुत रहा है। आज भी कोई पुस्तक आती है तो मैं पढ़ने की कोशिश करता हूं। राजनीति के दृष्टिकोण वाले लोग उनमें कितनी ही कमियां निकाले, मगर मैं तो अपने धार्मिक नजरिए से जब उनके गुण निहारता हूं तो मुझे एक Flawless life, निर्दोष जीवन ही दिखाई देता है। सबसे बड़ी बात, उन्होंने अहिंसा के सिद्धांत को जन सामान्य तक पहुंचाया। अहिंसा के माध्यम से वे कार्य सिद्ध करवाए जिनके बारे में ये माना जाता था कि ये काम तो बम गोली तथा बंदूकों से ही सिद्ध हो सकता है। दूसरी बात ये कि उनके कट्टर से कट्टर विरोधी भी उनकी बेदाग जिंदगी के कायल थे। उन पर किसी ने आरोप लगाने का दुःसाहस नहीं किया।

उनका सार्वजनिक मंचों पर प्रथम प्रवेश दक्षिण अफ्रीका में हुआ। सामान्य भारतीयों तथा एशियाई लोगों को न्याय दिलाने के लिए उन्होंने वहां की गोरी सरकार के विरुद्ध काफी संघर्ष किया था। वहां की सरकार ने भारतीय प्रजा के खिलाफ काफी गलत कानून बना रखे थे, कुछ बनाए जाने की योजना थी। जैसे कि भारतीय पद्धति से होने वाले विवाहों की मान्यता को रद्द किया जा रहा था। अफ्रीका में भारतीयों के प्रवेश और प्रवास पर काफी पाबंदियां लगा रखी थी। उन्हें खास इलाकों में रात को घूमने की इजाजत नहीं थी और भी कई अपमानजनक कानून थे जिनके विरुद्ध महात्मा जी ने सन् 1913 में प्रथम सत्याग्रह संग्राम चलाया। उस आंदोलन में उनका साथ नेटाल के Coal Mine के मजदूरों ने भी दिया। जोहान्सबर्ग, डरबन आदि शहरों के हजारों सत्याग्रही गिरफ्तार हुए। समग्र विश्व ने ये माना है कि वह अपने ढंग

से विश्व का सबसे पहला अहिंसक युद्ध था जिसमें आत्मबल ने अस्त्र बल पर विजय पाई थी।

वहां से मिली विजय के फलस्वरूप ही गांधी जी ने भारत की कई समस्याओं का अहिंसक पद्धति से समाधान करवाया था। जैसे कि चंपारण के नील की खेती करने वाले किसानों को गोरों के चंगुल से निकाला था। नमक आंदोलन चलाकर सरकारी Tax व्यवस्था को बदलवाया था। उन्होंने देश की स्वतंत्रता प्राप्ति करने के लिए भी अहिंसा को ही अपनाया था। क्रांतिकारी नेता उनकी इस पद्धति से सहमत नहीं थे। कांग्रेस में भी दो वर्ग थे एक नरम दल कहलाता था दूसरा गरम दल। गांधी जी नरम दल को प्रोत्साहित करते थे जबकि सुभाष चंद्र बोस गर्म दल का प्रतिनिधित्व करते थे। सुभाष चन्द्र बोस और गांधी जी के विरोध की बातें जन-2 तक तब पहुंची जब हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन पर सुभाष चन्द्र बोस ने गांधी जी के प्रतिनिधि सीता पटाभिरमैय्या को हराकर कांग्रेस अध्यक्ष पद को जीता था। सुभाष चंद्र बोस ने गांधी जी का सम्मान रखने के लिए बाद में अध्यक्ष पद से त्यागपत्र भी दे दिया था। आम जनता में ख्याल था कि त्याग पत्र देकर सुभाष बोस गांधी के विरुद्ध आग उगलेंगे। लेकिन नहीं, गांधी के निर्दोष व्यक्तित्व पर उन्होंने कोई प्रश्नचिह्न नहीं उठाया।

ब्रिटेन या अमेरिका के लोगों को इस बात का आश्चर्य होता था कि सुभाष चंद्र बोस अब भी गांधी जी की इज्जत करते हैं। एक बार एक ब्रिटिश पत्रकार आजाद हिंद फौज के सेनानी श्री सुभाष चंद्र बोस से मिलने आए और उनसे सवाल किया—'आप तो हिंसा के सिद्धांत को मानते हो और गांधी जी अहिंसा के। फिर भी आप उनका इतना आदर क्यों करते हो?'

सुभाष बोस ने उत्तर दिया—'इसलिए क्योंकि अहिंसा हिंसा से कहीं बड़ी नीति है। हां, ये बात और है कि अहिंसा के मार्ग पर गमन करने

के लिए धैर्य की बेहद जरूरत है जो मुझ में नहीं है।' ब्रिटिश पत्रकार भौंचक्का रह गया।

तो मैं बता रहा था कि कुछ जिंदगियां ऐसे आदर्श को हस्तगत कर लेती हैं कि उन पर अंगुलि उठाना नामुमकिन हो जाता है।

गांधी जी के प्रति लोक आस्था चरम उत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी। लोग उनके लिए कुछ भी बलिदान कर सकते थे। भारतीय जनता को ये लगता था कि ये महात्मा देश के लिए मसीहा बनकर आया है। इसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है, महत्त्वाकांक्षा नहीं है। न इसे कोठी चाहिए न गाड़ी, न अच्छे कीमती कपड़े चाहिएं, न कोई पद चाहिए। यह तो सब कुछ छोड़-छाड़ कर जन सेवा का पथ अपनाए हुए है। खुद बलिदानी है तो बलिदान की प्रेरणा भी देता है। लोग इस बात के मुतआस्सिर भी थे।

बीकानेर की घटना है। वहां पर महाराजा गंगासिंह का शासन था। गंगा सिंह अच्छे कुशल प्रशासक थे और गुणीजनों का आदर करते थे। उनकी कोशिश ये रहती थी कि देश के विशिष्टि प्रतिभा संपन्न व्यक्ति बीकानेर में आकर बसे और राज्य तथा प्रजा को अपनी योग्यता से लाभान्वित करें। इसलिए देश के कई विद्वानों को खोजकर मनाकर अच्छे वेतन देकर अपने यहां बीकानेर में लाए थे। उन प्रतिभाशाली व्यक्तियों में एक थे बाबू संपूर्णानन्द जी। इन्हें डूंगर कॉलेज का प्रधानाचार्य नियुक्त कर दिया। महाराजा को पता नहीं था कि श्री संपूर्णानन्द जी गांधी जी के हिमायती हैं। उस युग में रियासतों के सभी राजा ब्रिटिश शासन के मातहत थे। जो व्यक्ति ब्रिटिश शासन का विरोधी होता उसको वो अपना कट्टर दुश्मन मानते थे। कांग्रेसियों पर तो सरकार का डंडा सख्त ही था। कई बार उन पर जुल्म और भयंकर जुल्म भी ढाए जाते थे। राजनीति ऐसा ही धंधा है जिसमें कुछ भी जायज नाजायज हो सकता है तथा नाजायज भी जायज।

तो खैर, महाराजा गंगासिंह एक दिन प्रातः भ्रमण के बाद महल की तरफ आ रहे थे। मार्ग में कॉलेज और हॉस्टल था। वे छात्रावास का निरीक्षण करने चले गए। वहां एक कमरे में महात्मा गांधी का चित्र टंगा हुआ था। वे तो हैरान हो गए कि सरकार के अनुदान पर चलने वाले छात्रावास में गांधी जी का चित्र। समय ही ऐसा था। 1921 का असहयोग आंदोलन जोरों से चल रहा था। सरकार तथा रियासतों के राजा उस आंदोलन को कुचलने में लिए पूरा जोर लगा रहे थे। पकड़-धकड़ चालू थी, जितना संभव था जुल्म भी ढाए जाते थे और इधर राजा की नाक के नीचे गांधी के समर्थक बैठे थे। उन्होंने पुछवाया कि मेरे राज्य में गांधी का चित्र रखने वाला व्यक्ति कौन है? पता चला कि छात्रावास के Ward n शिवमूर्ति सिंह का वह कमरा था और उसी ने वह चित्र टांग रखा था। महाराजा ने अगले दिन शिवमूर्ति को बुलाने की बजाय कॉलेज के प्रधानाचार्य बाबू संपूर्णानन्द को राज भवन में बुलवा लिया और उनसे बोले—'प्रोफेसर साहब, अब तो छात्रावास भी विद्रोहियों का गढ़ बनता जा रहा है। कल मैंने वार्डन के कमरे में गांधी जी का चित्र टंगा देखा। आप उस चित्र को हटवाइए और वार्डन का इस्तीफा लीजिए। मुझे ऐसे कांग्रेसी प्राध्यापक नहीं चाहिए।' बाबू संपूर्णानन्द ये सब बात गंभीरता से सुनते रहे। फिर बोले—'महाराज, क्षमा करें यदि महात्मा गांधी का चित्र लगाना अपराध है तो यह अपराध मैं भी करता हूं। मेरे कमरे में भी उनका चित्र टंगा हुआ है। मेरा इस्तीफा भी लीजिए।' और उन्होंने वहां बैठे-2 ही अपना इस्तीफा लिखकर महाराजा को सौंप दिया। महाराजा गंगासिंह कुछ स्पष्टीकरण देना चाहें या और कोई बात चले उससे पहले तो वे राजभवन से उठकर बाहर चले गए। बाद में वे इन्दौर गए। वहां के एक कॉलेज में प्रधानाचार्य नियुक्त हुए।

ऐसी बलिदानी भावना का निर्माण गांधी जी के निर्दोष निष्पाप जीवन के प्रताप से हुआ था।

किसी के कहने से औरों का जीवन परिवर्तन नहीं होता। जीवन परिवर्तन तब होता है जब सामने कोई आदर्श जीवन होता है। गांधी जी अपने भाषणों से नहीं, बल्कि आचरण से दिशा प्रदान करते थे।

Ex mþ e is þ tter th n p ecep . एक उदाहरण सौ उपदेशों से ज्यादा कारगर होता है।

हर आदमी गांधी बने, आइंस्टीन बने, विवेकानंद बने—ये संभव नहीं है। वे अपने दम पर अपने-2 दोषों का संशोधन करते हुए शिखर पर पहुंच गए। लेकिन हम और आप भी अपने-2 स्तर पर ऊंचाइयों को छू सकते हैं। जिंदगी है तो दोष और पाप तो होंगे ही। ये संसार गुणदोष दोनों का मिश्रण है। हर जीवन गुण-दोषों का समन्वित रूप है। हमारी समझदारी उसी में है कि दोषों की मात्रा को घटा लें तथा गुणों की मात्रा को बढ़ा लें। आज के जमाने में शत-प्रतिशत दोष निवारण संभव नहीं है पर न्यूनता तो की जा सकती है। ये सच्चाई न केवल मानव के अन्तर्जगत् के बारे में है बल्कि संसार के हर कार्य के बारे में भी है। कोई ऐसा मार्ग नहीं, कोई ऐसा व्यवसाय नहीं, कोई ऐसा आचरण नहीं जिसमें गुण ही गुण हों या दोष ही दोष हों। ये मानव के विवेक पर निर्भर करता है कि वह गुणों की बढ़ोतरी करता है या दोषों की। यदि दोषों का दबाव घटता जाता है तो मानव की महत्ता है। यदि दोष बढ़ते जाते हैं तो उसकी निम्नता है। आप लोगों ने सेठ गोविंद राम सेक्सेरिया का नाम सुना होगा। अपने समय का नामी सटोरिया था। सट्टा मार्किट पर उसका एकाधिकार था। ये न समझें कि मैं एक सट्टा व्यापारी का नाम लेकर सट्टे के कारोबार का समर्थन कर रहा हूं। मैं इसका सख्त विरोधी हूं। मैं अपने पास आने वाले हर भाई को सट्टे का नियम करवाता हूं।

पूज्यपाद, चारित्र चूड़ामणि श्री मयाराज जी म. ने हमारे बाबा श्री जग्गूमल जी म. को सट्टे का नियम करवाया था। हमारे पिता बाबू श्री चंदगीराम जी ने सट्टे में बहुत कुछ खोया था। उनके पास कमाई

की कोई कमी नहीं थी। वकालत में खूब कमाते थे। एक बार रोहतक में एक सैशन जज आए थे। उनकी बेटी को कभी बाबू जी ने ट्यूशन पढ़ाई थी इसलिए उनका बहुत Reg rd करते थे। बाबू जी जिस केस में खड़े हो जाते शर्तिया जीतते थे। उस दौरान उनकी कमाई बेहिसाब हुई लेकिन ज्यादा कमाई के कारण वे गांधरियों[1] के साथ उठ बैठ करने लगे। गांधरियों ने उनको सट्टे की लत लगा दी। वे हापुड़ का बीजक करने लगे जितना कमाते उतना सट्टे में खो देते। उनको इस आदत से हटाने के लिए बाबा जी ने बहुत कोशिश की। प्रेम से समझाया, डांट से समझाया, कई बार तो पचौला तप भी किया ताकि भूखा देखकर सट्टा छोड़ दे। बाबू जी उनके आगे तो कह देते कि मैं आगे से सट्टा नहीं खेलूंगा। मगर गांधरियों की संगति ही ऐसी थी कि वे उन्हें फिर से सट्टे में फंसा देते।

मैंने देखा है यू.पी. और हरियाणा में आज भी कथाओं में ऐसे लोग आते है जिन्हें संतों के मुंह से नम्बर सुनने की लालसा बनी रहती है। ऐसे लोग धर्म को और हमें बदनाम करते हैं। ऐसे लोगों ने न धर्म को समझा और न गुरुओं की कीमत को।

लिहाजा, बात चल रही थी सेठ गोविंदराम सेक्सेरिया की। उसका बचपन घोर गरीबी में गुजरा था। जैसे-2 स्याना होने लगा, वैसे-2 कमाने की इच्छा और जिम्मेदारी का अहसास बढ़ने लगा। काम तलाश करने की दृष्टि से इधर-उधर चक्कर काटने लगा। एक दिन घूमते-2 किसी धर्मशाला में पहुंचा। उसके मालिक से पूछा कि क्या मुझे कुछ नौकरी मिल सकती है। धर्मशाला के मालिक ने उसे अगले दिन आने के लिए बोल दिया। उसे कुछ काम सौंप दिए। धर्मशाला की पहरेदारी करनी है। मालिक ने अगले दिन फिर उसे कहा कि पहरेदारी के अलावा आपको आने जाने वालों का नाम भी लिखना है, जिसको कितने बर्तन दिए, किससे सामान वापस आ गया आदि हिसाब लिखकर रखना है। वह

---

1 रोहतक में गांधरा परिवार संपन्न रहा है।

युवक बोला—मालिक, मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं। अतः लिख नहीं सकता।' मालिक बोला—'तब तो तुम हमारे काम नहीं आ सकते। तुमने एक दिन काम किया है इसलिए आठ आने ले लो।' युवक अपनी किस्मत को कोसने लगा। चेहरा उदास हो गया, रोनी सी सूरत लिए चलने लगा तो मालिक को दया आ गई। अपनी ओर से आठ आने और दे दिए। कुछ दिन तो जैसे-तैसे काम चलाया, फिर एक जगह नौकरी लग गई। बस, कंपनी के कागजात इधर से उधर लाने ले जाने का काम करना था। धीरे-2 बुद्धि खुल गई और सट्टा मार्किट में घुस गया। क्या गजब था—बस नाम चमक गया। सबसे बड़ा Kig of Market बन गया। उसके हिसाब से ही मार्किट खुलता और बंद होता था। गोविंदराम सेक्सेरिया नाम सट्टा मार्किट का पर्यायवाची हो गया। नाम की धूम थी। बड़े कुशल उद्योगपतियों में गणना होने लगी। शहर की संस्था का एक युवक अपने कुछ साथियों के साथ अपनी संस्था के लिए चंदा लेने के लिए आया तो सेठ गोविंदराम जी ने बिना किसी हीलो हुज्जत, आनाकानी के, खुशी-2, एहसान जताए बिना एक लाख रुपए निकाल कर दे दिए। वह युवक और उसके साथी दंग रह गए। उस युवक ने गोविंद राम जी की उदारता के बारे में अपने पिता जी को बताया। पिता जी बोले—बेटा, तुम्हें ऐसे दानवीर पुरुष का अपनी संस्था की ओर से सम्मान करना चाहिए। युवक ने संस्था के प्रमुख संचालकों को कहा तो सबने स्वीकृति दी और सभी सेठ जी के पास युवक के पिता सहित गए। कहने लगे— सेठ जी, इनका मन है कि आपका सार्वजनिक सम्मान किया जाए। सेठ कहने लगा—'इतनी छोटी बात के लिए मेरे सम्मान की क्या जरूरत है। मैंने कौन सा बड़ा काम कर दिया। हां, आप सबके आने की खुशी में मैं एक लाख रुपए और देना चाहता हूं।' ये कहकर एक लाख रुपए उस युवक के पिता जी के हाथ में रख दिए और कहने लगा—'मैंने कोई उपकार नहीं किया है। आपको याद होगा, मेरी आपके पास नौकरी लगी थी। पर पढ़ा लिखा न होने के कारण आप मुझे रख नहीं पाए। तब आपने मुझे एक रुपया दिया

था। आज मैं कुछ देकर कृत-कृत्य हुआ हूं। आने वाले समाज नेताओं ने कहा—पर आपने तो काफी बड़ा बदला चुकाया है। दो लाख रुपए देकर आपने सबको हैरत में डाल दिया। आप जैसे विशाल दिल वाले सेठ के दर्शन हमने पहली बार किए हैं। हम आपका विशेष रूप से सम्मान करना चाहेंगे।

सेठ बोला—ये सब बातें छोड़ो। सम्मान, फोटो माला में मेरी रुचि नहीं है।

न फोटो न माला न तख्ती खुशामद न मुझको कभी भी भाई।
मैंने दिया क्या भूल ये जाओ, यही विनति मेरी भाई ॥

जहां तक लाख या दो लाख रुपए देने की बात है तो पैसे का मूल्य तो मनुष्य की स्थिति और मन पर निर्भर है। उस समय मेरे लिए वो एक रुपया अमूल्य था, आज एक लाख का भी कोई मूल्य नहीं है। आने वाला हर शख्स सेठ की महानता पर विस्मित और चकित था।

तो मैं बता रहा था कि सेठ ने पैसा आने पर भी पैसे के दोषों को उभरने नहीं दिया। और जहां तक उसने धन के मूल्य की बात कही है वो बिल्कुल सही है। मनुष्य के जीवन में कितने मोड़ आते हैं इसकी कल्पना कोई नहीं कर सकता। कभी एक-2 दाने के लिए आदमी तरस जाता है तो कभी हजारों टन अन्न समुद्र में व्यर्थ समझकर वहां बहा दिया जाता है। एक मोहल्ले में एक निर्धन महिला अपने इकलौते पुत्र का बड़ी मुश्किल से भरण-पोषण कर रही थी। एक दिन गली में खिलौने बेचने वाला सौदागर आया। ऊंची-2 आवाज में बोल रहा था—बच्चो, खिलौने ले लो, खिलौने ले लो। गरीब औरत के बच्चे को उन खिलौनों में एक हाथी बहुत पसंद आया। अपनी मां के पास दौड़ा आया। कहने लगा—मां, मैं हाथी लूंगा। एक टके में मिलता है, बहुत अच्छा है, गोल मटोल है। मुझे दिला दो, मैं और कुछ नहीं मांगूंगा। मां ने कहा—बेटा, मेरे पास तेरे खाने के लिए भी पैसे नहीं है फिर खिलौने

के लिए कहां से लाऊं? बच्चा अड़ गया, नहीं मैं तो लूंगा, देख, मेरे दोस्त भी खरीद रहे हैं। मां उसकी भावनाओं को समझ रही थी पर अपनी मजबूरी को उससे ज्यादा समझ रही थी। उसके पास खिलौना खरीदने की गुंजाइश ही नहीं थी। बच्चा रोता, उससे पहले ही मां रोने लगी—बेटा, आज जिद्द मत कर, मैं एक आने का हाथी तुझे नहीं दिला सकती। बच्चा बहुत रोया, तड़पा, चीखा, हाथ-पैर मारे मगर घर की गरीबी ने उसे हाथी नहीं खरीदने दिया।

उस बाल मन में एक गहन संस्कार बैठ गया कि गरीबी से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं है। मैं भी किसी दिन धनवान् बनूंगा और मन की इच्छाओं को पूर्ण करूंगा। उस रोज तो वह रोता-2 सो गया लेकिन दिल के गहनतम स्तरों पर अमीरी के ख्वाब लेने शुरू कर दिए। उम्र स्यानी होने लगी, थोड़ी बहुत पढ़ाई भी की, फिर काम धंधा शुरू किया। काम में दिलों जान झौंक दी।

परिश्रम का फल सामने आया और हर कदम पर सफलता मिलने लगी।

हिम्मत करे इंसान तो क्या हो नहीं सकता।
कौन उकदा[1] है जो वा[2] हो नहीं सकता ॥

हर पहेली का हल है, हर समस्या का समाधान है, हर मुसीबत की राहत है, हर संघर्ष का विराम है मगर शर्त ये है कि आपको हिम्मत नहीं हारनी।

अब्राहम लिंकन अपनी जिंदगी में बार-2 फेल हुए लेकिन श्रम निष्ठा नहीं छोड़ी तो एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति बने।

बचपन में जिन लोगों को संघर्ष झेलने पड़े हैं उनकी जिंदगी में निखार बहुत आया है। उनका अन्तर्मन लक्ष्य के प्रति समर्पित हो जाता

---

1 पहेली 2 हल

है और उसी समर्पण के फलस्वरूप वे अपनी चाहतों को पूरा कर लेते हैं।

ऐसा हुआ कि महाराष्ट्र में एक बालक बड़ा शरारती था। उसे शौक तो कई तरह के थे पर नाटक देखने का शौक सबसे ज्यादा था। पैसे पास नहीं होते तो भी जैसे-तैसे जुगाड़बाजी करके नाटक देख ही लेता। वह नाटक देखने मात्र से शौक पूरा नहीं करता। उसके मन में तलब उठती कि देखूं, नाटक करने वाले कलाकार कैसे नाटक की तैयारी करते हैं। ग्रीन रूम और स्टेज की हकीकत में कितना अंतर होता है? बेचारे नटखट बालक को इतनी गहरी जानकारी कौन देता पर उसका मन तो भटकता ही रहता। एक बार शहर में 'स्वदेशी हितचिंतक नाटक मंडली' का रिहर्सल चल रहा था। वह शरारती बालक वहां आसपास घूम रहा था। अंदर से रिहर्सल की आवाजें आती तो उसके मन में मचमची उठती। उससे रहा नहीं गया। आखिर चुपचाप ग्रीन रूम के पास आया, परदा हटाया और अंदर घुस गया। वहां तैयारी कर रहे अभिनेताओं के काम में रुकावट आ गई। एक अभिनेता को तो गुस्सा आ गया। उसने उस शरारती बालक के दोनों हाथ पकड़े और मुंह पर एक जोरदार तमाचा जड़ दिया। शोर शराबा सुनकर मैनेजर आया। उसने सबसे पूछताछ की। कलाकारों ने बताया कि ये वाहयात लड़का यहां घुस आया है। उसने उस बच्चे से पूछा—अरे, तू यहां क्यों आया है?' लड़का न घबराया, न शरमाया। बोला—मेरी इच्छा है कि मैं नाटक लिखूं और नाटक खेलूं। मैं ये देखने आया हूं कि आपके यहां Mak p कैसे किया जाता है? छोटे से बालक के मुंह से ये बात सुन मैनेजर को अजीब सा लगा 'छोटे मुंह बड़ी बात।' कहने लगा—ओ महान् नाटककार, चलिए बाहर चलिए। एक धक्का दिया और ग्रीन रूम से निकाल दिया। बालक के चित्त पर गहरी चोट लगी। मन में संकल्प कर लिया कि नाटक लिखूंगा भी और नाटक करूंगा भी। और उसकी मेहनत का रंग आया। आहिस्ता-2 कलम थामी, नाटक लिखने शुरू कर दिए। एक वक्त आया कि मराठी भाषा के महान् नाटककार के रूप में

उसे लोगों ने मान्यता दी। उसका जन प्रिय नाम था—'मामा बरेरकर। आम जनता को या लेखकों, नाटक मंडलियों को उसके अतीत का क्या पता था। हर अच्छी नाटक मंडली चाहती थी कि मामा बरेरकर अपने लिखित नाटक के मंचन का अधिकार हमें दे दें। स्वदेशी हितचिंतक नाटक मंडली भी उनमें थी। उसको एक नाटक खेलने का अधिकार मिल गया। नाटक का Reh arsal चल रहा था। मैनेजर चाहता था कि स्वयं नाटककार कलाकारों की तैयारी आकर देखें और जरूरी सुझाव दें। उसने मामा बरेरकर को बुलवा भेजा। मामा आए मगर ग्रीन रूम के बाहर ही खड़े हो गए। मैनेजर को पता चला, वह स्वयं बाहर आया और बोला—'आप भीतर चलिए।' मामा ने पूछा—'अंदर जाने में कोई आपत्ति तो नहीं है।' मैनेजर चकित रह गया कि इतना बड़ा सम्मानित लेखक क्या प्रश्न पूछ रहा है? आखिर मैनेजर ने पूछ ही लिया कि आप किस कारण ये बात कह रहे हैं।' मामा बरेरकर ने वही बचपन की दास्तां सुनाई जब ग्रीन रूम में घुसने पर पहला तमाचा खाना पड़ा था तथा बाद में मैनेजर से धक्का मिला था। मैनेजर साहब पहले तो झेंपे। फिर हंसते हुए बोले—मगर अब तो आप नाटककार हैं, अतः पधारिए।

इस प्रसंग को सुनाने का लक्ष्य यही है कि अन्तर्मन में जो भावना प्रारंभ में जाग जाती हैं, वह जीवन पर्यंत बरकरार रहती है। प्रारंभिक वासनाएं ही बाद के जीवन की प्रेरणाएं बनती हैं।

तो लिहाजा, आपको सुना रहा था कि गरीबी में बचपन बिताने वाले उस लड़के ने एक ध्येय बना लिया कि इतना पैसा कमा लूं कि जीवन में कोई चीज चाहिए तो उसकी प्राप्ति में सोचना न पड़े। चढ़ती जवानी में ही वह समृद्धि के शिखरों को चूमने लगा। अच्छे संपन्न परिवार की कन्या से विवाह हो गया। मां की सेवा में कोई कमी नहीं आने देता था। जिस मां की बदौलत इस मुकाम पर पहुंचा था उस मां की मेहनत और गुरबत के दिनों को कभी भूलता नहीं था। बाजार की अच्छी से अच्छी महंगी से महंगी वस्तु वह मां के लिए खरीद कर लाता था।

मां मना भी करती मगर उसे तो मां की सेवा में आनंद ही आता था। उसकी मां भी सातवें आसमान में रहती थी। अहंकार का भाव नहीं था। पर एक खुशी हर वक्त मन को मुदित करती रहती कि लायक बेटे ने जिंदगी संवार दी। उसकी खुशियों में और इजाफा हुआ। बहू की गोद से एक लाल मिल गया। गृहस्थ जीवन तो इन्हीं उपलब्धियों में जीवन की सफलता, पूर्णता मानता है। दादी अपने पोते को गोद में लिए घूमती रहती। पोता कुछ बड़ा हो गया। एक रोज मोहल्ले में एक हाथी वाला आया। वह एक-2 टके में बच्चों को हाथी पर बैठाकर सैर करवा रहा था। दादी की गोद में बैठे पोते ने कहा—मुझे हाथी दे दो। दादी ने बेटे को बुलाकर कहा—बेटा, पोता हाथी मांग रहा है, खरीद ले। लड़का बोला—मां एक हाथी कम-से-कम एक लाख रुपए में आएगा, फिर सारी जिंदगी इसका खर्चा बंध जाएगा। मां बोली-बेटा क्या फर्क पड़ता है, बालक का दिल खुश हो जाएगा और अपने घर के बाहर हाथी बंधा रहेगा तो तेरे बाप दादा का नाम चमकेगा। बेटा हंसकर बोला—मां, याद होगा, मैंने एक टके का हाथी मांगा था। तब मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई थी। अब अपने पोते के लिए तू असली हाथी खरीद रही है। मां बोली—जो काम मैं नहीं कर सकी, तू कर सकता है। मेरा इतना भी पुण्य नहीं था कि अपने बेटे को एक टके का खिलौना हाथी दिलवा सकूं, पर तू इतना पुण्यवान है कि अपने बेटे को एक लाख का असली हाथी भी दिलवा सकता है। बेटा बोला—मैं आज जो हूं वह भी तेरी मेहनत और मेहरबानी की बदौलत है। तूने मुझे भी सब कुछ दिया और अब अपने पोते को दे रही है।

मां के इशारे पर उस युवक ने हाथी खरीदकर घर के आगे खड़ा कर दिया। बच्चे की मांग पूरी हो गई, मां की मुराद।

मूल बात ये है कि किसी भी चीज का मूल्य स्थिति और मानसिकता के ऊपर निर्भर है। एक वस्तु किसी के लिए करोड़ों की है तो दूसरे के लिए वही वस्तु कौड़ी की है। सैंकड़ों वर्ष पुरानी एक प्लेट की कीमत

An iq वालों से पूछोगे तो लाखों में खरीद लेंगे, किसी कबाड़ी से पूछो तो 2 रुपए भी न दे।

एक युवक ने अपनी युवा पत्नी को छोड़ दीक्षा ले ली। दीक्षा के बाद अकेली नारी ने अपना गुजारा करने के उद्देश्य से चरखा कातना शुरू कर दिया। वह युवा साधु गुरु चरणों में संयम आराधना करता रहा। काफी वर्ष बीत गए। एक बार गुरुदेव संघ सहित उसी गांव के बाहर उद्यान में पधारे जिस गांव का वह युवा मुनिराज था। वह मुनि यों तो विनयवान्, संयमी, तपी और गुणवान् था लेकिन बुद्धि की दृष्टि से सरल और भोला था। भोला व्यक्ति आत्म-कल्याण का राही तो होता है मगर कभी-2 व्यावहारिक नहीं रह पाता। Common Sense की साधु को भी जरूरत होती है। उसके गुरु उससे खुश तो बहुत थे पर भोलेपन को लेकर चिंतित भी रहते थे। जब गोचरी का समय आया तब गुरुदेव ने उसे विशेष संकेत किया कि अपने मोहल्ले में गोचरी जाने से बचना। वह 'तहत्त' कहकर चला गया। मगर उसे शहर के हर गली, मोहल्ले के रास्तों का पता नहीं था। इसलिए भूलकर अपने ही मोहल्ले में पहुंच गया। मोहल्ले में गया तो अपने संसारी घर में भी चला गया। वहां उसकी सांसारिक पत्नी कुछ उदास और चिंतित बैठी थी। मुनि जी ने पूछ लिया—आज इतनी उदास क्यों है? परेशान तो थी ही झल्लाकर बोली—तुम तो घरबार की जिम्मेदारी छोड़कर साधु बन गए, मैं कमाने के लिए रह गई। सोचा था—सूत कात-कातकर गुजारा कर लूंगी लेकिन एक औरत, कितने-2 काम करूं। आज सुबह से ये तकुआ परेशान कर रहा है। इसमें बल पड़ गए हैं, अब लोहार के पास जाना पड़ेगा फिर कहीं ये तकुआ ठीक होगा। मुनिराज कहने लगा—तू चिंता क्यों करती है, ये तकुवा मुझे दे। मैं लोहार को जानता हूं। उसके तकुवे का बल निकलवा लाऊंगा, ये तो निर्दोष काम है। मुनि तकुवे को लेकर लोहार के पास पहुंच गया। उससे कहा कि—इस तकुवे के बल निकाल दे। लोहार को यों तो दो-चार हल्की सी हथौड़ी की चोटें ही लगानी थी लेकिन संत के हाथ में तकुवा देखकर हैरानी हो गई। मुनि को परखने

के बहाने उसने कहा दिया—लाओ पैसे, और तकुवे को ठीक कर देता हूं। मुनि बोला—भाई, हम साधु हैं इसलिए पैसे पास नहीं रखते। लुहार बोला—साधु पैसे पास नहीं रखते तो वे तकुवा भी पास नहीं रखते। मुनि घबराने लगा, घबराहट में ही बोल उठा—तू मेरा एक दिन का संयम ले ले, संयम तो सबसे कीमती चीज है। तब तक लोहार भी अड़ गया। कहने लगा—मुझे संयम नहीं, नकद नारायण चाहिए, वो हो तो दे दे वर्ना दफा हो जाओ। मुनि कहने लगा—एक दिन का संयम थोड़ा लगता हो तो दो दिन का ले ले। पर लुहार नहीं झुका। करते-2 मुनि बोला—तू मेरी जिंदगी का सारा संयम ले ले। लोहार फिर भी टस से मस नहीं हुआ। साधु के मन में संयम के प्रति अश्रद्धा हो गई और गुरु के पास आ गया। गुरुदेव उसकी चाल और चेहरे को देखकर भांप गए कि मुनि जी किसी चक्कर में फंस गए हैं। धीरे से पूछा—ठीक हो ना? एकदम भरकर बोला—क्या खाक ठीक हूं। ये संयम मोक्ष क्या देगा, जब ये तकुवे का बल भी नहीं निकाल सकता। गुरु को सारा माजरा समझने में देर नहीं लगी। वहीं एक गंभीर विश्वसनीय अंतरंग श्रावक बैठा था। उसकी जेब में एक बहुमूल्य हीरा था। उससे कुछ समय के लिए ले लिया। मुनि के हाथ में रखकर कहा—'जा बाजार में 5-6 अलग-2 व्यापारियों के पास जा और इस पत्थर की कीमत पूछ कर आ।' वह मुनि पत्थर लेकर उपाश्रय से बाहर आया और पास ही एक मूंगफली बेचने वाला खड़ा था। उससे पूछा—भैया, इस पत्थर की आप क्या कीमत लगा सकते हो? मूंगफली वाले ने कहा—इसे फैंक दे सड़क के उस पार, यदि तुझे लेनी है तो मैं मुफ्त में 5-10 मूंगफलियां दे देता हूं। साधु आगे बढ़ा। एक सब्जी फरोश से उस पत्थर की कीमत पूछी। उसने कहा—एक भिण्डी या तोरी ले जा और इसे मुझे दे दे। चने मुरमुरे बेचने वाले ने एक पुड़िया देनी चाही। कपड़े के व्यापारी ने 5 रुपए देने की पेशकश की। चलते-2 वह साधु जौहरी की दुकान पर पहुंच गया। उस जौहरी ने जब उस पत्थर पर सरसरी नजर दौड़ाई तो संत की तरफ

देखा। पूछने लगा—ये बहुमूल्य हीरा आप कहां से चुराकर लाए हो? ये तो सवा लाख रुपए से ऊपर का है। सवा लाख तो मैं ही दे सकता हूं।

मुनि ने कहा—ये तो किसी सेठ की चीज है। मैं बेचने नहीं, बस कीमत पूछने आया हूं। अब मैं वापस जा रहा हूं। मुनि जी गुरुदेव के पास पहुंचे। हीरा सेठ को वापस सौंप दिया और गुरुदेव को अलग-2 लोगों ने जो कीमत बताई सो गुरुदेव को निवेदन कर दी। तब गुरुदेव ने उसे समझाया भोले भाई, जैसे एक कुंजड़ा हीरे की कीमत नहीं समझता बल्कि जौहरी ही हीरे की कीमत समझता है, ऐसे ही संयम की कीमत लुहार कैसे समझ सकता है। तू लोहार की बात को इतना महत्त्व न दे। संयम का तकुवे के बल निकालने से कोई वास्ता नहीं है। ये तो आत्म कल्याण का रास्ता है। मुनि को अब समझ में आया कि किसी भी वस्तु की कीमत परिस्थिति, मनःस्थिति तथा व्यक्ति के ऊपर निर्भर करती है। जैसे कि कभी आठ-2 आने की कीमत ज्यादा थी तो कभी दो लाख रुपए की कीमत कुछ नहीं थी। ऐसे ही एक टके में हाथी खिलौना ज्यादा कीमती लगने वालों को अगली बार लाख रुपए का हाथी सस्ता नजर आया है। इस उपमा से मुनि जी ने अपनी त्रुटि को संवार लिया। गुरुदेवों का ध्येय भी यही था कि इस भद्रिक संत के संयम में जो अश्रद्धा का दोष उभर आया है वह दूर हो जाए। संयम के दोष अतिचार निकल जाएं तभी जीवन की धन्यता है। हम सब भी इसी कोशिश में है कि संयम साधना के सूक्ष्म-स्थूल, सब दोषों का परिमार्जन करते जाएं। जो भव्य जीव आत्म दोषों का संशोधन करेंगे उनका यहां भी कल्याण होगा, आगे भी कल्याण होगा।

18. आत्म स्वातंत्र्य की घोषणा

साहू गोयम पण्णा ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयातीत सव्व सुत्त महोदही ॥

पूज्य गुरुदेवों की कृपा से जो कुछ सीखा है कुछ देर आपके समक्ष रखेंगे। भव्य जीव धर्म आराधन करें, रत्नत्रय को उज्ज्वल करें, यही हमारी कोटिशः मंगलकामनाएं हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी—

जणेण सद्धिं होक्खामि इइ बाले पगब्भइ।
कामभोगाणुराएणं केसं संपडिवज्जइ ॥[1]

भगवान् फरमाते हैं कि अज्ञानी जीव अपने आपको इस प्रकार झांसा देता रहता है कि मैं तो लोगों के साथ रहूंगा। जैसे आम आदमी कर्म करेंगे, वैसा मैं भी करूंगा। अच्छा या बुरा जो फल लोग भोगेंगे मैं भी भोग लूंगा। इसी अंधानुकरण और गतानुगतिक धारणा के कारण काम भोगों के अनुराग में उलझा रहता है या दुःख क्लेशों के भंवर में उलझा रहता है। उसे ये अहसास नहीं होता कि तू यहां भीड़ का हिस्सा बनने के लिए नहीं आया है। तुझे तो सबसे अलग निकलकर आत्मोत्थान के गगन में उड़ारी भरनी है। ऐ मानव, तू कोई कीड़ा मकौड़ा नहीं है जो जमीन पर ही रेंगता रहेगा। तुझे असीम अनंत की पुकार सुनकर उधर की ओर कूच करना है। तू अपनी मौलिक सत्ता का अहसास कर। तू विशुद्ध परमात्मा का प्रच्छन्न अवतार है। ये परिवार, ये समाज, ये राष्ट्र देश की अवधारणाएं, ये संसार का विस्तार तेरे लिए है, तू इनके लिए नहीं है। भारत के द्वितीय राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने एक जगह बड़ी पते की बात लिखी है—'आज का समाज उत्तरोत्तर एक सूत्र में

---

1 उत्तराध्ययन 5 अध्ययन 7 गाथा

आबद्ध होता जा रहा है। बाकी राहें रोककर समाज की गति एक राह में चलने लगी है। इसे हम समूह की राज-राह कह सकते है। बात यह है कि आज का समाज व्यक्तियों की शृंखला नहीं है बल्कि शरीरों की शृंखला है। यही कारण है कि स्वतंत्र गतिविधि की गुंजाइश दिन-ब-दिन घटती जा रही है। वास्तव में समाज नहीं चल रहा, एक भीड़ चल रही है। और हम सब इस भीड़ में खो गए हैं अर्थात् व्यक्ति, समाज नामक प्रवाहवाद में लुप्त हो गया है। यह बाढ़ सही मत की नहीं है बल्कि बहुमत की है। यही कारण है कि हम उत्तरोत्तर नगण्य होते जा रहे हैं क्योंकि अब हम समाज के स्वतंत्र अंग नहीं है। इंजिन की तरह जब समाज चलने लगता है तो रेल के डिब्बों की भांति असहाय हमें भी बरबस आगे सरकना पड़ता है। आज के इंसान को अपने पर भरोसा नहीं रहा। मनुष्य की भीतरी मंगल भावना पर भरोसा नहीं रहा और न मनुष्यों के नियंता भगवान् के न्याय पर भरोसा रहा। यही कारण है कि वह आज भीड़ का सहारा खोजता है। अपनी सुरक्षा के लिए सुख सुविधा के लिए और अकेलेपन एवं जायज़ जिम्मेदारी से बचने के लिए'।

इस सदी के महान् मनीषी, दर्शनशास्त्री का यह विश्लेषण कितना सटीक और सारगर्भित है। उसे प्रतीत हो चुका है कि मानव की निजी निर्णय क्षमता काफी न्यून हो चुकी है। वह जो कुछ सोचता, बोलता और करता है उसका लक्ष्य आत्म संतुष्टि नहीं है अपितु लोक संतुष्टि है। वह यदि भोजन भी करता है तो पेट भरने, शरीर संचालन के लक्ष्य से कम जन प्रदर्शन की भावना से ज्यादा होता है। वस्त्र, भवन जैसी निजी आवश्यकताएं भी सार्वजनिकता के घेरे में आ चुकी है। पारम्परिक नैतिक मूल्यों का संरक्षण भी यदि जन सामान्य में मान्य है तो पाल लिया जाता है। यदि वृहत्मानव समुदाय उस धारणा को अमान्य कर देता है तो दूसरा मानव भी उस उच्च मर्यादा को छोड़ देता है। उदाहरण के तौर पर जब से शराब को एक फैशन के रूप में लोगों ने लेना शुरू कर दिया है तब से अच्छे से अच्छे खानदानी आदमी

अपनी प्रतिज्ञा, मान प्रतिष्ठा, पूर्वजों की गरिमा को भुला देते हैं। दोस्तों के साथ बैठने मात्र से युवकों का निजी निर्णय फिसल जाता है और रहन-सहन, खान-पान, चाल-चलन के हर नियम-उपनियम ताक पर धर दिए जाते हैं। ऐसे प्रवाह से केवल वही व्यक्ति बाहर निकलते हैं जिनकी अपनी स्वतंत्र सोच है और दृढ़ निश्चय के धनी हैं। यूनान के एक तत्त्वज्ञानी डायोजनीज थे। उनके पास उस इलाके का प्रसिद्ध धनपति आया। उनकी सेवा में उसने एक शराब की बोतल पेश की और कहा कि ये हमने विशेष रूप से आपके लिए तैयार करवाई है। यूनान में शराब कोई अपवित्र वस्तु नहीं मानी जाती थी बल्कि एक Statu Sym bl या Common चीज मानी जाती थी। फिर भी डायोजनीज तो अलग किस्म की हस्ती थे। वे प्रवाह में बहकर न सोचते थे, न चलते थे। दशवैकालिक सूत्र में जो कहा है कि **'पडिसोय मेवप्पा दायव्वो होउकामेण'** जो इंसान कुछ बनना चाहता है उसे स्रोत के विपरीत अपने को खड़े रखना ही होगा।' डायोजनीज ने उस धनपति से कहा 'भाई जिस शराब के पीने से हमारा कीमती शरीर धूल में मिल जाता है उस शराब को धूल में मिला देना क्या उचित नहीं है?' ये था उस युग के स्वतंत्र विचारक का स्वतंत्र चिंतन। आज मेरे देश में ऐसे दृढ़ विचारकों का अकाल पड़ता जा रहा है जो अपने असूलों को प्रतिकूल हवाओं में भी निभाते रहें, ऐसे शूर वीर दुर्लभ होते जा रहे हैं। अपने चरित्र की रक्षा में अटल अकम्प खड़े एक और व्यक्तित्व का परिचय आपको दे रहा हूं—Napl eon Bona p rte यूरोप का सेनापति और सम्राट् बन चुका था। उसने अपने 'Tu leries' नामक महल की मरम्मत कराई। महल के अधिकारियों ने महल के स्नानागार में फ्रांस के अच्छे चित्रकारों द्वारा सुंदर चित्र बनवाए। सम्राट् जब स्नान करने गए तो देखा कि स्नानागार में नारियों के चित्र टंगे हुए है। बिना स्नान किए ही बाहर लौट आए। अधिकारियों को आज्ञा दी कि 'नारी का सम्मान करना सीखो। स्नानागार में नारियों के विलासपूर्ण चित्र बनवाकर नारी का अपमान मत करो। जिस देश में नारी को विलास का साधन मान

लिया जाता है उस देश का विनाश हो जाता है।' ये Stand ऐसे आदमी ले सकते हैं जिनकी अपनी सोच होती है तथा जो हर घटना को निजी दृष्टिकोण से देखते हैं। पर आज कहां है ऐसी सशक्त विचारधारा?

जिन लोगों की अर्न्तदृष्टि जागृत हो जाती है वे अपना पृथक् मार्ग चुन पाते हैं। वे समझ जाते हैं कि यदि दुनिया अंधी है तो हम अंधे क्यों बने, यदि एक भेड़ दूसरी के पीछे कुएं में छलांग लगा रही है तो हम तो भेड़ नहीं बने। ऐसे ज्ञानदृष्टि वाले मानव ही अपना तथा औरों का कल्याण कर सकते है। अहमदाबाद में सन् 1980 के आसपास की घटना है कि सुलेमान नामक एक मुस्लिम युवक किसी कंपनी में सर्विस कर रहा था। उसी आफिस में कार्य कर रही एक जैन लड़की से उसका परिचय हो गया। उस लड़की के माध्यम से वह जैन संतों के संपर्क में भी आया। एक बार वह आचार्य जगवल्लभ जी के पास धर्मचर्चा कर रहा था। आचार्य जी ने उसे समझाया कि इस्लाम में खुदा को सबसे ऊंचा दर्जा दिया है और माना जाता है कि उस खुदा के हुक्म के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता तथा नमाज में दो लफ्जों पर ज्यादा जोर दिया गया—अल्लाह और अकबर। ये तीनों शब्द देखें तो जैन धर्म के संदेश को ही प्रकट करते हैं।

1. खुदा अर्थात् जो खुद को जाने वह खुदा अर्थात् अरिहन्त।
2. अल्लाह—जो किसी की आह न ले वह अल्लाह। जैन साधु किसी की आह नहीं लेता अतः साधु ही अल्लाह होता है।
3. अकबर—जिसकी कबर ना हो अर्थात् जो मरे नहीं ऐसे होते हैं—सिद्ध भगवान्।

सुलेमान को तीनों शब्दों की व्याख्या बड़ी अच्छी लगी। धीरे-2 उसने मांस मदिरा का नियम ले लिया और नवकार मंत्र का जाप करने लगा। इस परिवर्तन मात्र से उस जैन लड़की ने उसके साथ शादी कर ली। लड़की के मां-बाप तो सहमत हो गए। लेकिन लड़के के मां-बाप खफा हो गए। उन्होंने कहा कि जैन धर्म की विचारधारा छोड़ दे अन्यथा

तेरे सारे संपत्ति विरासत के अधिकार छीन लेंगे। लेकिन लड़का अडिग रहा। कहने लगा—मुझे चिंतामणि रत्न मिल गया है। सब छोड़ सकता हूं पर जैन धर्म जैसा श्रेष्ठ धर्म नहीं छोडूंगा। परिवार वालों ने उसे बेदखल कर दिया और उसके सारे अधिकार छीन लिए गए मगर वह अपने पथ से विचलित नहीं हुआ। यही होती है संसार प्रवाह से बाहर निकलने की हिम्मत।

अपने खानदान को, परिवार के मोह को, पूर्व संस्कारों को, विरासत में मिलने वाले अधिकारों को छोड़ पाना आसान नहीं होता। कुछ मनोबली इंसान ही इतना बड़ा कदम उठा सकते हैं।

इस जहां और इस जहां की तल्खियों[1] के रू ब रू,
रक्स[2] करते जाएंगे हम मुस्कुराते जाएंगे।
नाम लेवा दर्द का कोई यहां हो या न हो,
दोस्तो, हम दर्द की दौलत लुटाते जाएंगे।
चश्म-ए-आलम[3] में तजल्ली[4] की कमी पाएंगे जब,
नूर[5] बनकर चश्म-ए-आलम में समाते जाएंगे।
हां, हमारे फैसलों में फैसला इक ये भी है,
दोस्त बनते जाएंगे, दुश्मन बनाते जाएंगे ॥

उस मुस्लिम युवक को कितनी प्रताड़नाएं झेलनी पड़ी होंगी, कितने विरोधों का सामना करना पड़ा होगा यह केवल कल्पना का ही विषय है। मगर उसका निर्भीक निर्णय अनुकरण योग्य है। ऐसे ही दृढ़ निश्चयी एक और भाई का कथानक 'बहुरत्ना वसुन्धरा' पुस्तक में प्रकाशित हुआ है।

ट्रेट गांव का सरपंच लालू भाई बघेला एक बार जड़ेश्वर महादेव के दर्शन करने गया। वहीं धर्मशाला में एक मूर्तिपूजक संत महाशय सागर

---

1 कटुता 2 नृत्य 3 विश्व की दृष्टि
4 चमक 5 प्रकाश

जी ठहरे हुए थे, उनके भी दर्शन हो गए। उन्होंने लालू भाई को सप्त कुव्यसन छोड़ने की प्रेरणा दी। वह बोला—आपने जो-2 बड़े पाप गिनाए हैं उनसे तो मैं दूर ही रहा हूं और आगे भी रहूंगा। परंतु मुझे तो बीड़ी पीने का व्यसन है। कभी-कभी तो सौ बीड़ी पी जाता हूं। वैसे कहने को सौ बीड़ी कह दी होंगी। फिर भी यों समझे कि वह काफी बीड़ी पीता था। कहने लगा कि आपके पावन दर्शन हुए हैं तथा आपकी प्रेरणा हुई है तो आज के बाद बीड़ी का हमेशा के लिए त्याग कर देता हूं। उस दिन के बाद उसका उन संतों से गहरा संबंध जुड़ गया। समय-2 पर उनके दर्शन करने जाने लगा। चातुर्मास काल में जाकर उपवास भी कर लेता था। धीरे-2 विशुद्ध जैन बन गया। रात्रि भोजन एवं कंदमूल का त्याग भी कर लिया। एक बार उसके भाई की लड़की का विवाह प्रसंग था। उनके यहां रात्रि भोजन रखा गया था उसने तब भी रात्रि भोजन नहीं किया। धीरे-2 सामायिक भी करने लगा। पर्यूषणों में चार व्रत और चार एकाशने करने की व्यवस्था बना ली। संवत् 2045 (सन् 1988) में तो उसने वर्षीतप की आराधना भी की। इतना कमाल का परिवर्तन उसे सामान्य जीवन जीने वाले लोगों से भिन्न स्थापित करता है। संवत् 2042 (सन् 1985) में एक बार गुरुओं का प्रवचन सुन रहा था। सुनते-2 अंतरात्मा भीग गई। उठते ही सीधा अपने विरोधी चेयरमैन के घर पहुंच गया। अपनी पिछली सब लड़ाइयों को भुलाकर माफी मांग ली। उसके बाद दोनों जिगरी दोस्त बन गए।

नवकार मंत्र के प्रति उसकी श्रद्धा इतनी गजब की है कि आम आदमी तो क्या अच्छे-2 संत भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते इसीलिए तो मैं कहा रहा था कि कोई विरले पुरुष ही भीड़ से अलग चलने का साहस रखते हैं। नवकार मंत्र से जुड़ी कई कहानियां उसके संबंध में उस पुस्तक में लिखी हुई हैं। एक बार उसके भानजे को खून की उल्टी लग गई। उसने कहा—घबराओ मत, नवकार मंत्र का सहारा लो। गर्म पानी मंगवाया, नवकार मंत्र पढ़कर उसे पानी पिला दिया और थोड़ी देर में ही बालक ठीक हो गया।

इसी तरह कौली जाति के एक बच्चे को सांप ने काट लिया। उन लोगों को यकीन था कि लालू भाई के मंत्र से जहर उतर सकता है। जब बच्चे को उसके पास लाए तब वह बच्चा मृतप्राय सा था लेकिन जैसे-2 उसने मंत्र पाठ करना शुरू किया। बच्चा विष के असर से मुक्त होने लगा और कुछ ही देर में बिल्कुल ठीक हो गया।

एक पोस्टमैन उसके पास आया और कहने लगा कि 6 महीने से पेट दर्द से परेशान हूं। उस सरपंच ने नवकार मंत्र का शरणा दे उसे पीड़ा मुक्त कर दिया। खुद उसको एक बार बिच्छू ने काट लिया। मन में कुछ भी प्रकंपन पैदा नहीं हुआ। एकांत में चला गया और नवकार मंत्र का जाप शुरू कर दिया। नवकार मंत्र के जाप के प्रभाव से शीघ्र ही ठीक भी हो गया।

ये घटना केवल उसी के साथ हुई हो ऐसा नहीं है। बचपन में मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ है। एक साल पर्यूषणों के सातवें दिन मुझे ततैय्यों ने काट लिया। डंक बहुत ज्यादा थे, मैं बच्चा भी था। बुखार हो गया। एक तो डंकों का दर्द था, फिर बुखार, तीसरे अगले दिन संवत्सरी का पौषध करना था। यदि बुखार नहीं उतरा तो घर वाले पौषध नहीं करने देंगे—ये चिंता थी। मैंने नवकार मंत्र का जाप शुरू कर दिया। साथ ही ये भावना भाई कि कल पौषध निर्विघ्न हो जाए। नवकार मंत्र का तत्काल प्रभाव आया, शाम तक बुखार उतर गया। अगले रोज आराम से पौषध भी हो गया। ये दीगर बात है कि पारणे वाले दिन बुखार हो गया। उस बात की मुझे कोई चिंता नहीं हुई। मुझे तो पौषध की ही फिक्र थी, वो पूरा हो गया। बुखार आदि तो शरीर का स्वभाव है। होता ही रहता है।

हमें तो बचपन से ही नवकार मंत्र पर श्रद्धा रही है। आज कल लोगों की श्रद्धा डावांडोल है। सबको बड़े-2 मंत्र चाहिएं। नवकार मंत्र को छोड़ दिया। बस **'ॐ ह्रीं श्रीं ठः ठः स्वाहा'** कर दो और काम फतेह।

ऐसे लोभी भक्तों के कारण धर्म का बेड़ा गर्क हो रहा है। श्रद्धा पक्की हो तो ये दिन देखने को ही न मिलें।

लिहाजा बात लालू भाई की है। एक बार गांव के ज्यादातर खेतों में जीरी में बंटी रोग लग गया। किसानों ने Pesticid डालकर उस कीड़े को खत्म किया किंतु लालू भाई ने सोचा—अपनी फसल में मैं कोई कीड़े मार दवाई नहीं डालूंगा और कमाल ये हुआ कि उसका खेत पूरी तरह रोग से सुरक्षित रहा।

ये दास्तां उस इंसान की है जिसने अपने आप जिंदगी घड़ने का फैसला किया है। कोई और उसकी जिंदगी का संचालन करे ये उसे गवारा नहीं था। ये संसार तो अपनी मर्जी से हमको किसी भी मार्ग पर धकेल सकता है उसे अपनी रुचि के मुताबिक चलना है जबकि धर्म संसार से अलग हटकर चलने और करने की कला है। संसार तो धन संपत्ति, पद और ओहदे की पूजा करता है जबकि धर्म इनसे ऊपर उठकर गुणों की पूजा करना सिखाता है। संसार मांगना सिखाता है, धर्म देना और छोड़ना सिखाता है। संसार आपको दुर्बल और सुविधावादी बनाता है जबकि धर्म आपको सबल तथा सिद्धान्तवादी बनाता है।

स्वामी विवेकानन्द जब नरेन्द्र के नाम से कॉलेज की पढ़ाई कर रहे थे तब उन्हें स्वामी रामकृष्ण परमहंस जैसे गुरु की प्राप्ति हुई। वे काली के अनन्य भक्त हो गए। उन दिनों में वे घोर आर्थिक तंगी के दौर से गुजर रहे थे। कई बार तो खाने तक की समस्या बन जाती थी। एक बार उसकी मां ने कहा—'बेटा, तुम काली मां से अपने लिए कुछ मांग लो ताकि घर का गुजारा चल जाए।' नरेन्द्र ने गुरु से पूछा। गुरु ने कहा—'नरेन्द्र, चिंता की कोई बात नहीं है। निखिल भुवनों की अधीश्वरी जगदम्बा के चरण कमलों में तुम्हारी अनन्य श्रद्धा और भक्ति है, अविचल निष्ठा और अटूट विश्वास है। श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा और विश्वास कभी व्यर्थ नहीं जाते। अतः तुम जगदम्बा के पास जाओ। तुम्हारी जो इच्छा हो, तुम जो कुछ चाहते हो उनसे मांग लो। आज जो

कुछ मांगोगे वही मिल जाएगा। जाओ बेटा, मां से मांगकर निहाल हो जाओ। युवा नरेन्द्र मां के चरणों में गए। साष्टांग प्रणाम करके काली के चरणों में गद्‌गद कण्ठ से बोले—मां, मुझे विशुद्ध ज्ञान दे, भक्ति दे, विवेक दे और सांसारिक प्रपंचों से विरक्ति प्रदान कर। इससे अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए। कुछ नहीं चाहिए, मां कुछ नहीं। यदि मन कुछ चाहे तो उस कुछ को भी ध्वंस कर दे। दयामयी मां दया कर। फिर गुरु चरणों में लौट आए। गुरु को जानकर आश्चर्य हुआ। फिर दोबारा भेजा, वही दोहराया, तीसरी बार भेजा तो भी वही कहा।

ये है किसी उच्च शिखर पर आरूढ़ भव्य व्यक्तित्व की पहुंच। साधारण मानव इच्छाओं के जाल को छिन्न-भिन्न नहीं कर पाता। उसकी संतुष्टि इच्छाओं की पूर्ति से जुड़ी रहती है पर विलक्षण मानस वाले मानवों की संतुष्टि का धरातल इच्छाओं की समाप्ति पर टिका रहता है। यही कारण है कि ये व्यक्ति स्वामी विवेकानंद बन पाते है। मां की कुक्षि से कोई विवेकानंद, गांधी, दयानंद, सहजानंद नहीं निकलते। वे निकलते हैं आत्म रमणता की कुक्षि से। वे जो भी सार जीवन से निकालते हैं वह आत्म चिंतन, मनन, विश्लेषण की मधानी में रिड़क कर निकालते हैं। वे ऊर्ध्व गगन में सूर्य की भांति जगमगाते हुए प्रतीत होते हैं। छोटे-मोटे लोभ लालच उनके मानस को क्षुब्ध नहीं कर पाते। किसी विचारक ने लिखा है—'निःस्वार्थ भाव ही धर्म की कसौटी है, जो जितना अधिक निःस्वार्थी है वह उतना ही अधिक अध्यात्म व शिव के समीप है।

आपने हिन्दी भाषा के महान् विवेचक आलोचनाकार आचार्य राम चन्द्र शुक्ल का नाम सुना होगा। उन जैसा प्रखर आलोचनाकार न उस जमाने में था और न उनके बाद हुआ। उन्होंने जो मानक स्थापित कर दिए हमेशा के लिए कायम हो गए। ऊंचे व्यक्तित्व के धनी थे। नागरी प्रचारिणी सभा काशी में 25 रुपये वेतन पर काम करते थे। उनके गहन अध्ययन और तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर एक मित्र

सेठ ने अलवर राजदरबार को कहकर वहां उनको नौकरी दिलवा दी। वहां उन्हें राजा साहब के लंबे-2 अंग्रेजी भाषणों का हिन्दी में अनुवाद करना था और कुछ लिखने पढ़ने का काम भी करना था। राज्य की ओर से 1400 रुपये वेतन, रहने को सजा-धजा शानदार बंगला तथा वाहन का प्रबंध किया गया। जब वे पहले दिन वहां गए तो देखा हर दरबारी आते ही झुककर जमीन पर हाथ रखता है और फिर माथे पर लगाता है। जाते समय तब तक उल्टा-2 चलता है जब तक ओझल न हो जाए ताकि राजा साहब की तरफ पीठ न हो। छोटे-बड़े सभी ऐसा करते थे और अपेक्षा थी कि वे भी ऐसा ही करें। उन्होंने तीन दिन बिताए पर आगे उनसे ऐसी खुशामद बर्दाश्त नहीं हुई। चौथे दिन बिना किसी को कुछ कहे काशी लौट आए। पीछे एक पत्र छोड़ आए लिख आए—चीथड़े लपेटे चने चबाएंगे, चौखट पर चाकरी करेंगे नहीं चौपट चमार की।' वहीं फिर 25 रुपये की नौकरी में गुजारा करने लगे। कहां ऐसे खुद्दार आदमी मिलते हैं? ये लोग किसी के चलाए नहीं चलते, ये अपनी राह बनाते हैं और चल देते हैं। उनका मार्गदर्शक उनकी अंतरात्मा होती है। उन्हें इस बात की चिंता नहीं रहती कि दुनिया इस बात को स्वीकारेगी या ठुकराएगी, मानेगी या विरोध करेगी। उन्हें तो अपने जमीर से मतलब होता है। जमीर उनका गुरु होता है, जमीर उनका भगवान् होता है। वे संसार का न अपमान करते हैं, न सम्मान। पर अपनी आभ्यन्तर जिंदगी में संसार को अधिमान नहीं देते। वहां बैठाए रहते हैं अपने विवेक संबोधि के देवता को, वो जैसा आदेश देता है, तदनुसार चलते हैं।

कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊं या मृत्यु आज ही आ जावे
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच देने आवे
तो भी न्यायमार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥

जिन व्यक्तियों की अपनी निर्णय क्षमता विकसित नहीं होती। वे बड़ों के दिशा निर्देशन का पालन करके अपनी यात्रा को संपन्न कर सकते हैं। लेकिन उनके साथ ये खतरा रहता है कि यदि जिंदगी के किसी मोड़ पर गुरु या मार्गदर्शक का सान्निध्य नहीं मिला और हर वक्त तो मिलना संभव भी नहीं, तो वे बिल्कुल भटक जाते हैं। वे घोर निराशा एवं हताशा के शिकार हो जाते हैं।

जैसा कि बौद्ध साहित्य का एक प्रसंग है कि बुद्ध का एक श्रावक था। श्रावक कहते है सुनने वाले को। उसका एक बेटा काल कवलित हो गया और श्रावक दुःखी हो गया। यदि गहराई से सोचो तो यदि उसने सुना होता तो दुःखी नहीं होना पड़ता। उसने सुना तो था पर कानों से सुना था, दिल से नहीं सुना था। बुद्ध को पता चला कि अत्यंत दुःखी है। उन्हें आश्चर्य हुआ कि मेरे पास वह दूर-2 तक उपदेश सुनने आता है, बड़ी रुचि लेता है, चर्चा भी करता है, कितना अर्सा हो गया उसे धर्म और बुद्ध से जुड़े मगर एक झटके में सब कुछ तहस-नहस हो गया। बुद्ध बोले—उसने वर्षों से सुना पर जरा भी नहीं गुना। बेटे ने मरकर उसकी कलई खोल दी। उसका दुःख ऐसा कि गांव में चर्चा का विषय बन गया—वह रोज श्मशान में जाता, रोता, बातें करता, घंटों बैठा रहता। बुद्ध के पास आना-जाना भी बंद। इतना दुःखी हो गया कि मार्ग में भिक्षु मिलते तो उनको वंदन भी नहीं करता। उसके हितैषियों ने बुद्ध को खबर दी कि पागल होने को है। बुद्ध स्वयं चलकर उसके घर आए। उसके शोक का कारण पूछा। उपासक, शोक क्यों है? उपासक तो उसे कहते है जो पास बैठने वाला होता है मगर पास बैठने मात्र से कुछ नहीं होता जब तक कि मेरी तरंगों से तरंगित नहीं हो जाते। वह बोला—मैं पुत्र की मृत्यु से दुःखी हूं। क्या आपको पता नहीं है कि मेरे बुढ़ापे की लकड़ी चली गई, मेरा अकेला बेटा चला गया। यों कहते-2 बुद्ध के सामने ही छाती पीट-2 कर रोने लगा। बुद्ध ने समझाया—'देखो मरणधर्मा ही मरा है, जो मरता है वही मरा है। जो नहीं मरता वह नहीं मरा। तूने नष्ट होने वाले से राग बांध लिया। अब अमृत को खोज। जो

तेरे बेटे में अमृत अर्थात् अमरण धर्मा था तूने उसकी खोज नहीं की। तू भी मरेगा, उससे पहले, जल्दी से जल्दी अपने भीतर की पहचान कर ले, वहां भी अमरणशील तत्त्व है। तू अपने को शरीर मत समझ, नहीं तो तड़फेगा। यही दुःख से पार जाने का उपाय है।' पता नहीं, उस श्रावक का दुःख मिटा या नहीं, बुद्ध की शिक्षा उसे समझ आई या नहीं। वैसे ऐसे लोग विवेक बुद्धि से रहित होते हैं। अतः दुःखी होना, दुःखी रहना उसका स्वभाव बन जाता है। जिन्हें समझाने की ही जरूरत न पड़े ऐसे व्यक्ति तो बहुत थोड़े होते हैं, हां कुछ लोग अच्छी संख्या में मिल जाते हैं जो किसी के समझाने से समझ जाते हैं। पर बहुमत उन लोगों का है जिनके पास न अपनी सोच होती है और न औरों की समझ का फायदा उठाते हैं। **यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्? लोचनानां विहीनस्य दीपकः किं करिष्यति?** जिसकी अपनी समझ नहीं है शास्त्र या शिक्षादाता गुरु उसको क्या दे सकता है। यदि किसी आदमी की आंखें ही काम नहीं करती उसके लिए दीपक क्या फायदा पहुंचा सकता है।

आखें अगर्चे बन्द हैं तो दिन भी रात है।
इसमें कसूर क्या है भला आफ़ताब[1] का?

अपनी समझ के मुताबिक जीवन की दिशा तय करने वाले कुछ राष्ट्रीय पुरुषों की घटनाएं सुनाऊंगा।

गोपाल कृष्ण गोखले उन दिनों Inspector of Schools थे। बच्चों के अध्ययन, उनकी प्रतिभा तथा जन्मजात संस्कारों की जांच करने का उन्हें शौक था। केवल किताबी पढ़ाई को वे शिक्षा नहीं मानते थे। उनका विचार था कि शिक्षा, शिक्षक और स्कूल ये सब निमित्त है, असली उपादान तो छात्र की अपनी आत्मा है। निमित्त अच्छे हो तो उपादान का विकास शीघ्र और समुचित हो जाता है, नहीं तो उपादान अपने अंदर ही सिमटकर रह जाता है और यदि उपादान अच्छा हो तो

---

1 सूर्य

हल्के निमित्तों से भी अपनी प्रगति कर लेता है। यदि आत्मा अभव्य है तो तीर्थंकर भी उसे बोध नहीं दे सकते और यदि आत्मा निकटभवी है तो चूड़ियों की खनखन रुकने मात्र से बोधि लाभ प्राप्त कर लेते हैं। दाल के साथ कोरडू को पतीली में डाल दो, दल पक जाएगी पर उस कोरडू में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ऊपर से देखो तो दोनों एक जैसी। निमित्त उपादान का पारस्परिक साहचर्य क्या-2 रंग दिखा सकता है उसकी बानगी देखिए—एक बार नवद्वीप के कुछ पंडित बंगाल के चौबीस परगना जिले के कुमारहाटी गांव में शास्त्र चर्चा करने पहुंचे। चूंकि नवद्वीप उस युग में विद्या और विद्वानों का केन्द्र था। वहां के विद्वान् अन्य स्थानों के विद्वानों को हीन भावना से देखते थे और शास्त्र चर्चाओं में निरुत्तर करके उन्हें अपमानित करने का ध्येय रखते थे। कुमारहाटी गांव Mostly तो कुम्हारों का गांव था। मगर वहां जो ब्राह्मण रहते थे वे अव्वल दर्जे के पंडित थे। हालांकि अधिक वाद-विवाद से बचते थे, अतः नाम ज्यादा नहीं था। नवद्वीप वाले नए-2 विद्वान् बने थे अतः अहं भाव कुछ ज्यादा था। स्थानीय विद्वानों ने एक योजना बनाई। जहां वे बाहरी विद्वान् ठहरे थे वहां एक कुम्हार के युवा लड़के को स्त्री वेश पहनाकर सेविका के रूप में भेज दिया और एक 7-8 साल का बालक भी तैयार करके भेज दिया। अगली सुबह हुई। पंडित वर्ग उठा और स्नान पूजनादि में जुट गया। उधर कौवे मकान की मुंडेर पर बैठकर कांव-2 करने लगे। तभी वहां 7-8 साल का बालक उस स्त्री के पास दौड़कर आया। बोला—मां, मां ये कौए क्यों चिल्ला रहे हैं? क्या ये हमारे मेहमानों का स्वागत कर रहे हैं या इनके श्लोकों का उत्तर दे रहे हैं। पंडितों की उत्सुकता उस बालक और उस युवति की बातों की ओर बढ़ गई। देखने लगे कि ये औरत क्या कहती है। उस औरत ने बालक से कहा—'बेटा, मुझे क्या मालूम, मैं तो अनपढ़ औरत हूं। अपने यहां बड़े-बड़े पंडित पधारे हुए हैं उनसे पूछ ले। बच्चा पंडितों के पास चला गया। पूछने लगा—ये कौव्वे क्यों और क्या बोल रहे हैं? पंडित बोले—सुबह हुई है, इन पक्षियों को भूख लगी होगी। तभी वह स्त्री भी पंडितों के पास पहुंच

गई। बच्चा फिर जिद्द करने लगा—मां मुझे बता ये कौवे कांव-2 क्यों कर रहे हैं? आखिर वह स्त्री बोली—तू अभी संस्कृत भाषा को तो जानता नहीं है फिर भी मैं एक श्लोक बता देती हूं। इसका उत्तर इन पंडितों से पूछ लेना। अतः उस स्त्री ने कहा—**'तिमिरारि स्तमो हन्ति शंकाकुलित मानसाः, वयं काका वयं काका इति जल्पन्ति वायसाः (जल्पन्तीति प्रगे द्विकाः)** इस श्लोक को सुनकर पंडित हैरान रह गए। उन्होंने उस बालक को बताया कि सूर्य अंधकार को नष्ट कर रहा है कहीं यह हर काली चीज को नष्ट करने की धुन में हमें ही नष्ट न कर दें, इस डर से कव्वे कह रहे हैं कि हम काक हैं, हम काक हैं। यही उनकी कांव-2 का राज है। पंडितों ने उस स्त्री से पूछा—हे भद्रे, ये श्लोक आपने किससे सीखा? वह बोली—पंडित प्रवरो, मैं पहले तो एक स्त्री हूं, फिर सेविका हूं। मैं कुछ पढ़-लिख सकूं, इतनी फुर्सत कहां? मगर मेरे अड़ोस-पड़ोस में पंडित लोग रहते हैं। वे दिन-रात संस्कृत पढ़ते और पढ़ाते रहते हैं। उनके मुंह से निकले शब्द मुझे याद हो गए हैं। बस मैं और कुछ नहीं जानती। नवद्वीप के पंडितों ने सोचा—इस गांव में जब ऐसे दिग्गज विद्वान् रहते हैं फिर हम यहां क्या करेंगे और वे वापस ही चले गए।

कहने का भाव ये है कि वातावरण अनुकूल हो तथा अपना मन तैयार हो तो हर चीज में निखार आ जाता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान करना ही नहीं है बल्कि जीवन निर्माण करना भी है। गोखले जी का ध्येय भी यही था कि शिक्षा संस्थाओं में बालकों को जीवन बोध का, नैतिक मूल्यों का, पारिवारिक दायित्वों का तथा राष्ट्रीय भावनाओं का अहसास भी हो, उनमें सोए हुए सत्य, सदाचार, परोपकार एवं करुणा के संस्कार जागृत हों। बालकों के जीवन निर्माण में घर और विद्यालय दो स्थानों के वातावरण का Main Role होता है। यों तो मित्र दोस्त आदि भी जीवन को Gu d करने वाले होते हैं मगर दो स्थान तो निःसंदेह अपनी मुख्य भूमिका अदा करते ही हैं। घरों की हालत आज ऐसी है कि बच्चे मां-बाप की लड़ाइयों को देखकर या तो मुरझा जाते हैं या फिर खुद लड़ाकू बन जाते हैं। शराबी पिता के नक्शे कदम पर

चलकर बच्चे नशीली दवाओं के शिकार हो जाते हैं। घर के माहौल का असर पड़े बिना रहता ही नहीं है। एक समाज सुधारक ने देखा कि एक बालक सड़क के किनारे खड़ा-खड़ा Urin कर रहा है। उसे बड़ा नागवार गुजरा। वह जानता था कि किस परिवार का बालक है। उस बच्चे की शिकायत करने और उसे सुधारने की चर्चा करने वह उसके पिता से मिलने चला। जैसे ही उस घर के निकट पहुंचा तो क्या देखता है कि उस बालक का पिता छत पर खड़ा होकर नीचे पेशाब कर रहा है। अब उस समाज सुधारक की समझ में आया कि कसूर उस बालक का कहां है, यह दोष तो पिता की ओर से आया है।

सेवाग्राम आश्रम के बाहर कुछ बालक शरारत कर रहे थे और एक-दूसरे को भद्दी-भद्दी गालियां दे रहे थे। अंदर बैठे-2 गांधी जी ने जब ऐसी गालियां सुनी तो बड़े दुःखी हुए। उन्होंने अपने सचिव महादेव देसाई को कहा, इन बच्चों के पिताओं को गांव से बुलाकर लाओ। देसाई गांव में गया और एक-एक करके बालकों के पिताओं को ढूंढ निकाला और उनसे कहा, कि गांधी जी ने आपको याद किया है। वे तो फूल कर कुप्पा हो गए कि हम इतने बड़े आदमी हो गए जो गांधी जी ने बुलावा दिया है। सभी मिलकर सेवाग्राम में पहुंचे। गांधी जी उन पर एकदम बरस पड़े। आने वाले हक्के-बक्के रह गए। चौबे गए छब्बे बनने, दूबे बनकर आए। सोचा था गांधी जी से आशीर्वाद मिलेगा, यहां उल्टे झाड़ पड़ गई। आखिर हौंसला जुटाकर बोले, बापू, बच्चों की गलती के लिए आप हमें क्यों डाट रहे हो? गांधी जी ने समझाया कि मूल गलती घर में हुई है। आप लोग अपने घरों में ऐसी गालियों का प्रयोग करते हो, उसी से बच्चे सीखे हैं। इसलिए गलती बच्चों की बाद में है, पहली गलती बड़ों की है। आज जरूरत है, बच्चों को पढ़ाने की बजाय बच्चों के मां-बाप को पढ़ाया जाए।

सभ्य शिष्ट इंसान अपनी सभ्यता शिष्टता को सुरक्षित रखता हुआ औरों को भी शिष्टता सिखा देता है। एक शिष्ट और शालीन व्यक्ति

सभा को संबोधित कर रहा था। भाषण प्रभावशाली था। श्रोताओं में से एक आदमी को उसकी शोभा सुहाई नहीं। और उसकी खिल्ली उड़ाने और भाषण की दिशा भंग करने के उद्देश्य से खड़े होकर पूछने लगा—महाशय, क्या आप बता सकते हैं कि गधे के शरीर पर कितने बाल होते हैं। वक्ता ने न शिष्टता छोड़ी, न झल्लाया अपितु उसी को मुखातिब करते हुए कहा कि मंच पर आने की कृपा करें तो अभी गिनकर बता दूंगा।' लोग पूछने वाले का ही मजाक करने लगे। खैर, मैं आपको बता रहा था कि गोपाल कृष्ण गोखले का भाव रहता था कि बच्चों के हृदयों में सुप्त संभावनाओं को उभारूं। एक स्कूल में गए। सब बच्चों को इकट्ठा कर लिया और कहा कि मैं आप सबसे एक सवाल पूछ रहा हूं—अपनी अंतरात्मा से सच-2 जवाब देना। मान लो, तुम अपने माता पिता जी के साथ वन में जा रहे हो। माता-पिता कुछ दूरी पर अलग-2 चल रहे हैं। उस समय एक बाघ आ जाए तो वह तुम्हारे पिता की ओर लपकेगा। आप पिता जी की सहायता के लिए जाओगे तो वह माता जी को खाने दौड़ेगा। ऐसे में तुम क्या करोगे? सब बच्चे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। किसी को कुछ उत्तर नहीं सूझा। एक लड़का खड़ा हुआ और कहने लगा—मैं स्वयं बाघ के सामने चला जाऊंगा जिससे मेरे पिता जी बच जाएंगे। गोखले उस बालक के उत्तर से प्रसन्न हो गए। वे जान गए ये बालक अंदर से समर्पण भावों से ओत-प्रोत है। जानना चाहोगे कि वह बालक कौन था? वह था मोहनदास कर्मचंद गांधी। उसे किसी ने सिखाया भी नहीं था। फिर भी उसकी अंतरात्मा स्वयं ही इतनी विशुद्ध थी। ये बात सिखाने पर बोली होती तो Orig a l नहीं होती, बनावटी होती।

गांधी जी का समग्र जीवन निखालिस था। उसमें बनावट और कृत्रिमता नहीं थी। उनके अपने विचार थे। अपना दृष्टिकोण था। कोई उनसे सहमत न भी होता तो भी वे अपने दृष्टिकोण के प्रति प्रतिबद्ध और वफादार रहते थे। एक दिन मोहनदास ने अपनी मां को शिकायत की कि छोटा भाई मुझे तंग करता है। जब मैं पेड़ पर

चढ़ने की कोशिश करता हूं तो ये मेरी टांग खींच कर नीचे गिरा देता है। मां ने बच्चों की शरारतों को स्वाभाविक समझकर कह दिया कि अगली बार जब वह पेड़ पर चढ़े तो तू उसे नीचे गिरा देना। मोहन बोला—मां, ऐसी शिक्षा मुझे मत दो। आप भैय्या को कहो कि आगे से मुझे परेशान न करे।

इस तरह की निजी सोच गांधी जी की रही थी।

कई लोग स्वतंत्रता के आंदोलन में ऐसे उभर कर आए थे जिन्हें हम मौलिक चिंतक कह सकते हैं। एक घटना है कि मुसलमानों का एक जलसा था। बड़े-2 शायर, उपन्यासकार, विद्वान्, वक्ता आदि-2 उस जलसे में आमंत्रित थे। उन दिनों उर्दू भाषा का एक मशहूर अखबार चला करता था। नाम था 'जियाजुल सिद्दकी'। उसके संपादक को भी निमंत्रण पत्र दिया गया था। उस अखबार की ओर से एक 15 वर्ष का लड़का जलसे में हाजिर हुआ। उसने सभा में मंत्री से कहा कि मैं जियाजुल सिद्दकी अखबार का नुमाइंदा हूं। सचिव ने कहा—ठीक है, बेटा, मगर अखबार के संपादक, मेरा मतलब, आपके अब्बाजान को बुलाया गया था। वो कहां है? युवक बोला—जनाब, मेरे अब्बाजान तो कई वर्ष पहले पूरे हो चुके हैं। अखबार का संपादक मैं ही हूं। सचिव महोदय मन ही मन परेशान कि इस बालक से क्या बात करूं। फिर भी संयत भाषा में बोले—बेटा, यहां निमंत्रित किए गए व्यक्तियों को भाषण देना है। वह लड़का बोला—जनाब, भाषण मैं ही दूंगा। सचिव फिर असमंजस में पड़ गया। बात को टालने के उद्देश्य से कहने लगा—क्या आप भाषण लिखकर लाए हो? बालक ने उत्तर दिया—नहीं, यों ही जुबानी ही बोलूंगा। सचिव महोदय का मानसिक संताप ऊपर झलकने लगा था। फिर भी कहना पड़ा—ठीक है, कोशिश करेंगे। आपको समय दिया जाए। पहले जरूरी-2 वक्ता बोल लें फिर आपका नम्बर आ सकेगा। यों करते-2 जब सभी भाषण पूरे हो चुके तब उस बालक का नम्बर आया। जैसे ही बोलना शुरू किया श्रोता चकित रह गए। जो

सभा उठने के करीब थी। एकदम दत्तचित्त होकर सुनने लगी। बोलने वाला हर वक्तव्य प्रमाण सहित दे रहा था। बोलता गया। लोग तालियों पर तालियां बजाते रहे। सारा मंच गड़गड़ा उठा। लंबा भाषण देकर जैसे ही वक्ता रुका, लोगों ने कंधों पर उठा लिया। सबने मिलकर उसे एक उत्तम विशेषण दिया—'युवा कंधों पर वृद्ध मस्तिष्क।'

वही युवक स्वतंत्र भारत का शिक्षामंत्री भी बना, नाम था मौलाना आजाद।

प्रतिभा का संबंध आयु से न होकर आत्मा से है। **'तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।'** तेजस्वी व्यक्ति के तेज का दर्शन किया जाता है, आयु का नहीं।

नंदी सूत्र में चार प्रकार की बुद्धियों का विस्तृत विवेचन किया है। पहली बुद्धि है औत्पातिकी, दूसरी है वैनयिकी, तीसरी है कार्मिकी तथा चौथी है पारिणामिकी।

उप्पत्तिया वेणइया कम्मिया परिणामिया।
बुद्धी चउव्विहा वुत्ता पंचमा नोवलब्भइ ॥[1]

इन चार बुद्धियों में पहली बुद्धि औत्पातिकी की विशेषता बताते हुए कहा है—

पुव्वमदिट्ठमस्सुयमवेइय तक्खण विसुद्ध गहियट्ठा।
अव्वाहय फल जोगा बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥[2]

किसी वस्तु के विषय में पहले से न कुछ देखा, न कुछ सुना और न कुछ जाना फिर भी तत्काल विषय को स्पष्ट रूप से समझने की क्षमता रखने वाली तथा अभिप्रेत लक्ष्य की प्राप्ति तक अवश्य पहुंचने वाली बुद्धि औत्पातिकी बुद्धि है।

---

1 नंदी सूत्र गाथा 61
2 नंदी सूत्र गाथा 62

औत्पातिकी बुद्धि मानव की जन्मजात विलक्षणता की सूचना देती है। पूरे घटनाचक्र का मुख्य नायक एक छोटा सा बालक रोहक है जिसकी मोहक सूझबूझ बड़ी-2 उलझनों को मिनटों में सुलझा देती है। उदाहरण के तौर पर उज्जैनी के राजा ने नटों के ग्राम प्रमुख को संदेश दिया कि आपके गांव के कुएं का पानी बहुत मीठा है जबकि शहर के कुएं का पानी खारा है। ऐसा करें कि शीघ्र ही अपने गांव के कुएं को शहर में भेज दें। गांव का मुखिया जानता है कि राजा बचकानी बात कर रहा है। मगर उसको उल्टा जवाब भी क्या दें, वह 'ना' तो सुन ही नहीं सकता। उसके नेतृत्व में नटों की पंचायत कोई समाधान ढूंढ रही थी तभी रोहक आ पहुंचा। उसने बड़े बुजुर्गों की चिंता का कारण पूछा तो उन्होंने बता दिया कि ऐसे-2 हमारे राजा की ओर से एक अहमकाना फरमान आया है कि अपना कुआं शहर में भेज दो। रोहक बोला—क्यों, चिंता करते हो, राजा को खबर भिजवा दो कि हमारी तरह हमारा कुआं भी बहुत शर्मीला, संकोची और भोला है। वह शहर की तड़क-भड़क से डरता है। आप ऐसा करें कि अपने शहर के एक कुएं को यहां भेज दो ताकि शहर वाला कुआं हमारे ग्रामीण कुएं को समझा-बुझाकर, संकोच तोड़कर साथ ले जाएगा। ग्राम-वासियों ने ये समाचार राजा तक पहुंचा दिया और राजा समझ गया कि इस उत्तर को देने वाला बालक कितना प्रतिभाशाली है।

तो भाइयो, ध्यान होगा मैंने बताया था कि भारतीय राजनीति में कुछ अच्छे-2 लोग हुए हैं जिनकी अपनी ही मर्यादाएं थी, अपने ही असूल थे। जो घर, परिवार, समाज में रहकर भी इनके अनुचित दबाव में कभी नहीं आए चाहे राष्ट्रीय नीति का मुद्दा था, चाहे पारिवारिक आवश्यकताओं का मसला वे लोग अपने सिद्धांतों के अनुरूप जीए। देश के दूसरे प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी थे। एक कायस्थ परिवार में पैदा होकर भी विशुद्ध शाकाहारी रहे। देश के सर्वोच्च पद को पाकर भी कभी अपनी गरीबी और दूसरे गरीबों को नहीं भूले।

कभी शानोशौकत की जिंदगी बसर नहीं की। सादगी से जीना उनका जीवन मंत्र रहा था।

जब सर्दी अधिक होती तो वे दो कुर्ते पहन लेते थे और ऊपर खादी का कोट डाल लेते थे। एक बार उन्हें विदेश यात्रा पर जाना था। कोट पुराना था, जो कंधे के पास फट भी गया था। वे बाकी तैयारियां तो कर रहे थे पर कपड़ों की तरफ कोई ध्यान नहीं था। उनके सुपुत्रों—अनिल, सुनील को ये बेगौरी प्रधानमंत्री की गरिमा के अनुकूल नहीं लग रही थी। उन्होंने नया कोट सिलवाने का अनुरोध किया। पर शास्त्री जी नहीं माने। पुत्र भी अटल थे, एक दिन दो कोटों का कपड़ा खरीद लाए। साथ ही नेहरू जी के दर्जी को भी ले आए। शास्त्री जी ने दर्जी से काफी देर तक बातचीत की। उसके कंधे पर हाथ धरकर दोस्तों की तरह टहलते रहे। लड़कों को बड़ी खुशी हुई कि चलो योजना कामयाब हो गई। वर्ना अड़ जाते तो मनाना मुश्किल हो जाता। कुछ दिन बाद जब शास्त्री जी विदेश यात्रा के लिए रवाना हो रहे थे तो उन्होंने वही पुराना कोट पहन लिया। बच्चे बहुत झुंझलाए। यह क्या है? पिता जी, आप वही फटा कोट पहन कर विदेश जा रहे हो? शास्त्री जी मुस्कराए। कहने लगे—'फटा कोट? कहां फटा है? जरा देखो तो सही।' और बच्चों ने देखा तो सचमुच कहीं से भी फटा हुआ नहीं था। बच्चे निरुत्तर हो गए और प्रधानमंत्री महोदय विदेश चले गए। लड़के खीजे हुए तो थे ही, सीधे दर्जी के पास गए। उनसे पूछा—आपने पापा का नया कोट क्यों नहीं सिया? दर्जी बोला—उन्होंने नया कोट तो सीने के लिए दिया ही नहीं था, 'उन्होंने मुझसे कहा था कि मैं तेरी कला परखना चाहता हूं और कला इसमें है कि पुराने कोट को इस तरह रफू कर दे कि किसी को लगे ही नहीं कि कभी फटा भी था।' मैंने तो वैसे ही कर दिया। तब बच्चों को समझ में आया कि पिता जी की दृष्टि कितनी विशिष्ट और अनुपम है।

शास्त्री जी को पता था कि देश के गरीब लोग किस तरह अपना गुजर बसर करते हैं। आजकल के सुविधावादी, मौका परस्त नेताओं को ए.सी. कमरों में बैठने के बाद देश के गरीबों का कहां ध्यान रहता है। उन्हें तो अपने बैंक बैलेंस की ही फिक्र रहती है। यही ताने-बाने बुनते रहते हैं, देश जाए भाड़ में, उन्हें तो अपनी कुर्सी से मतलब है।

यही कारण है कि 18 महीने के शास्त्री जी के राज ने 18 साल के नेहरू के राज को भुला दिया था। शास्त्री जी जैसा गौरव आज कहां दिखाई देता है।

कुछ और अद्‌भुत पुरुष इस धरा पर हुए हैं जिन्होंने अपने युग और परिवेश को नए आयाम प्रदान किए थे। बंगाल के मसीहा के रूप में विख्यात श्री ईश्वर चंद्र विद्यासागर किसी परिचय के मोहताज नहीं है। एक बार रात के दस बजे थे। चारों और अंधकार छाया हुआ था। विद्यासागर एक परिचित गली से जा रहे थे, अचानक उनके कानों में किसी के रोने सिसकने की आवाज आई। आवाज में दर्द भरा था। उनका मृदुल हृदय धड़कने लगा। मन में दुःख की तरंगें उठने लगी। कुछ देर तो वहां रुककर उस आवाज को और अपने अंदर उठते करुण स्वरों को सुनते रहे। अरिष्टनेमि भगवान् ने बाड़े में बंद पशु-पक्षियों के क्रंदन को सुना और तुरंत उनको मुक्त करवा दिया। इंसान वही है जिसमें किसी दुःखी के प्रति दया का भाव हो।

वो दिल दिल नहीं, वो आंख आंख नहीं।
जिसे किसी मुसीबत जदा की मुसीबत नजर नहीं आती ॥
किसी की आंख तर देखूं तो अश्क आंखों से जारी हो।
किसी की बेकरारी में मुझे भी बेकरारी हो ॥
किसी जान से ज्यादा न अपनी जान प्यारी हो।
मेरी जिंदगी का मकसद और करकज़[1] इन्कसारी[2] हो ॥

---

1 केन्द्र 2 प्रेम

श्री विद्यासागर से रहा नहीं गया और उन्होंने उस घर की सांकल को खड़खड़ा दिया। एक दीन दरिद्र इंसान ने दरवाजा खोला और विद्यासागर भीतर गए। मकान जर्जरित था। बातचीत शुरू की तो ज्ञात हुआ कि वह घर एक निर्धन ब्राह्मण का था। और कुछ देर पहले वह ब्राह्मण ही रो रहा था। विद्यासागर ने पूछ ही लिया 'दादा, रो क्यों रहे थे?' ब्राह्मण ने आंगतुक की तरफ देखा, सारे शरीर में कंपकंपी छूट गई। 'भाई, दूसरे के दुःख को जानकर आज के आदमी प्रसन्न होते हैं, आप भी मेरा दुःख जानना चाहते हैं?' विद्यासागर को लगा कि इस आदमी के साथ कुछ लोगों ने कठोरता पूर्ण व्यवहार किया लगता है। फिर बड़ी विनम्रता के साथ कहा, 'दादा, छाती पर हाथ रखकर कह रहा हूं कि मैं सचमुच आपका दुःख जानना और समझना चाहता हूं। भगवान् से तो बड़ा कौन है? परंतु मनुष्य से यदि मनुष्य का दुःख हल्का हो सकता होगा तो मैं हृदय से प्रयत्न करूंगा।' बूढ़ा ब्राह्मण आए हुए आदमी की संस्कार ज्योति से नमित हो गया। उसे महसूस हुआ कि विश्व के लोग दुःख का भी स्वाद लेते हैं लेकिन कुछ इंसान सचमुच ही फरिश्ता बनकर दुःखी का दुःख दूर करते हैं। उनका हृदय अपने लिए नहीं, औरों के लिए धड़कता है। **'संत हृदय नवनीत समाना।'** विश्वस्त भाव से ब्राह्मण ने कहा, सचमुच, अच्छी बात है। मैं अपना दुःख सुनाकर हल्का तो हो ही जाऊंगा। फिर विद्यासागर ने कहा, 'मेरा विचार मानव के धर्म की रक्षा का रहता है। मंदिर और मस्जिदों की पूजा उपासना से अधिक मैं मानव सेवा को बड़ा धर्म मानता हूं।

खुदा के बंदे तो हजारों वनों में फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उनका बंदा बनूंगा जिनको खुदा के बंदों से प्यार होगा।

घर का मालिक वृद्ध महानुभाव जिंदगी में बहुत चोटें खा चुका था। इसलिए उसकी अन्तर्पीड़ा बीच-2 में प्रकट हो ही जाती थी। उसने कहा—ठीक है, हो न हो... परंतु जो मेरी बात सुनकर बहुत से

लोगों की तरह आप खुश होंगे तो...?' विद्यासागर जी ने कहा—ऐसा मानने की क्या जरूरत है दादा। दादा में हिम्मत आई। रोते-2 उसने अपनी दासतां बयां कर ही दी। एक मात्र लड़की के विवाह के लिए मैंने सर्राफ से 300 रुपये उधार लिए थे। उन्हें वापिस नहीं लौटा सका, इसलिए सर्राफ ने नालिश कर दी और अब उस नालिश के परिणामस्वरूप यह टूटा फूटा घर भी जा रहा है। क्या करूं? अगली सात अगस्त को मुझे रकम भरनी है नहीं तो मेरा सारा आधार ही चला जाएगा और कदाचित् उस दिन के बाद इस दुनिया में ही न रहूं। इस दर्द भरे वाकये को सुनकर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर कुछ देर सोचते रहे फिर उन्होंने मुकद्दमें की रकम, तारीख, नालिश करने वाले का नाम, बूढ़े ब्राह्मण (दादा) का नाम तथा कोर्ट की अन्य जरूरी-2 बातें धीरे-2 समझ ली। नोट कर ली और दादा को आश्वासन देकर चले गए। वृद्ध ब्राह्मण को इस संबंध में कोई आशा नहीं थी। वह 7 अगस्त को कोर्ट में पहुंचा। वहां जाकर पता चला कि मुकद्दमा वापस उठा लिया गया है। ब्राह्मण को आश्चर्य और हर्ष ने घेर लिया। ब्राह्मण के नाम से कोई तीन सौ रुपए भर गया था। सुनते ही आंखों से कृतज्ञता की बूंदे छलछला आई। मन ही मन रकम भरने वाले को आशीर्वाद दिया। उसने बड़ी खोजबीन की। तब पता चला कि रकम देने वाले महानुभाव बंगाल के महान् विद्यागुरु ईश्वर चन्द्र विद्यासागर थे और वहीं उस रात उनके घर रात को सहानुभूति देने पधारे थे।

इस तरह भीड़ से भिन्न विचारधारा रखने वाले पुरुष ही इस सृष्टि में कुछ उच्चकोटि के काम कर सकते हैं। उन्हें यश की कामना नहीं होती, अपयश का भय नहीं होता। संसार उनके कार्यों को अच्छा मानता है या ठुकराता है। इस प्रकार की चिंताओं से मुक्त रहकर वे अपने अंदर से प्रेरणा लेते हैं। वे श्रेष्ठ कार्य करके भी किसी को जताते नहीं है कि मैंने ऐसा किया है। उनकी आत्मा जैसा कहती है वे उसके मुताबिक ही काम करते हैं। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर उसी नसल के अनूठे अनोखे व्यक्ति थे। आज विश्व उन्हें उदाहरण के

रूप में लेता है। आप भी उसी मुकाम को छू सकते हैं ऐसा विश्वास अपने मन में भर लो।

जो आत्माएं जिनवाणी के इस महत्त्वपूर्ण संदेश को समझेंगी और अपनाएंगी उनका यहां भी कल्याण होगा और आगे भी कल्याण होगा।

पूज्य गुरुदेव श्री सुदर्शन लाल जी म. के प्रवचन आगमों की व्याख्या थे, इतिहास का उद्घोष थे, आत्मा की आवाज थे, साधना के सरगम थे। प्रमाद निद्रन्तद्रा को तोड़ने वाला उनका शंखनाद जिसने सुन लिया, वह दिवाना बन गया, जिसने सुनकर अपना लिया, वह देश विरत या सर्व विरत बन गया, चारित्र के मानचित्र बनाने वाले उनके प्रवचनों की प्रासंगिकता सर्वकाल बनी रहेगी।